चतुर्थ अध्याय

ब्रह्म निरूपण

स्वरूप - निर्धारण के तत्व -

नामदेव और कबीर उच्चकोटि के ब्रह्म परायण सन्त थे। उनका जीवन सत्य के साक्षात्कार की साधना थी। अतः उनके काव्य में जीवन और दर्शन, अनुभूति और अभिव्यक्ति की सहजता व एकात्मता स्पष्ट है जिसके द्वारा उन्होंने शाश्वत सत्यों का ही चारु मूल्यांकन किया है।

ब्रह्म दर्शन से तात्पर्य नामदेव और कबीर द्वारा निरूपित ब्रह्म के स्वरूप विश्लेषण से है। ब्रह्म या परमतत्व चिन्तन मनुष्य की मूल्यान्वेषी प्रवृत्ति के साथ ही आरम्भ हो गया था। चिन्तन की पद्धति ही दर्शन कहलाती है।[1] अतः दर्शन के अन्तर्गत सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न परमतत्व विवेचन का ही रहा है। इसी कारण प्रायः दर्शन का सामान्य अर्थ ब्रह्म विषयक विवेचन ही लिया जाता है।

वैज्ञानिक दृष्टि से स्वरूप गठन के 1. नाम, 2. रूप 3. गुण और 4. लीला ये 4 तत्व निर्धारित किये गये हैं। इसी आधार पर भारतीय दर्शन की परम्परा में विकसित ब्रह्म के स्वरूप की तीन स्तरों पर मान्य परिकल्पना को ही दर्शन और साहित्य में अभिव्यक्ति मिली है।

1. ब्रह्म 2. ईश्वर 3. अवतार की परिकल्पना। इसी पर आधृत ब्रह्मदर्शन परम्परा की दृष्टि से निर्गुण व सगुण इन दो धाराओं में विभाजित किया जाता है।[2] सगुण परम्परा के अन्तर्गत ही ब्रह्म के साकार रूप की कल्पना की गई और अवतारवाद का जन्म हुआ।

---

1. श्री एस. राधाकृष्णन - The Brahma Sutra P. 20
"A system of thought is called Darshana"

2. प्रो. प्रेमसागर - मध्यकालीन भक्त कवियों की ब्रह्म परिकल्पना - पृ. 20

परम्परा

भारतीय दर्शन की परम्परा में ब्रह्म के दो रूप माने गये हैं पर और अपर रूप ।[1] इसे ही निर्विशेष और सविशेष भी कहा गया है । निर्विशेष और ही "निर्गुण" और सविशेष अर्थात् विशेष गुणों से युक्त ही "सगुण" माना जाता है ।

ब्रह्म का निर्गुण या निर्विशेष रूप ही अन्तिम सत्य है और उसका सविशेष या सगुण रूप जगत् और जीव की अपेक्षा से होने से "सापेक्ष रूप" कहा जाता है और निर्गुण रूप निरपेक्ष रूप । यह दृश्यमान् जगत् उसी सत्य के अंश का प्रसार है, यह ब्रह्म की अव्यक्त सत्ता है । उपनिषद् में ब्रह्म के दो रूप अव्यक्त और व्यक्त भी कहे गये हैं । जिसे मूर्त और अमूर्त शब्दों द्वारा अभिव्यक्त किया गया है ।[2] इस प्रकार उस परमतत्त्व के त्रिगुणातीत, अनिर्वचनीय सत्ता के निर्विशेष रूप के लिए ही "निर्गुण" शब्द का प्रयोग किया जाता है जिसे किसी विशेषण या लक्षण से लक्षित नहीं किया जा सकता । वही निर्गुण ब्रह्म है ।

सविशेष ब्रह्म ही दार्शनिक परम्परा में "ईश्वर" है जिसमें भाव रूप में गुण चिह्न, विशेषणों की सत्ता विद्यमान रहती है। यही "सगुण ईश्वर है ।[3]

भारतीय दर्शन में वेदों से लेकर आधुनिक दार्शनिकों ने ईश्वर के इन दोनों रूपों का उपरोक्त दृष्टिकोण से ही विवेचन किया है । उसी परम्परा में नामदेव और कबीर के दार्शनिक विचार व ब्रह्म सम्बन्धी विचार भी उसी श्रृंखला की कड़ी ही ज्ञात होती है । इनके परमाराध्य नामदेव के "विट्ठल- तथा "राम" तथा कबीर के "राम" नामों का आवरण हटा देने पर वे केवल "ब्रह्म" रह जाते हैं । ये नाम उस परमतत्त्व के बोधक शब्द मात्र हैं ।

---

1. तस्मिन् दृष्टे परावरे" - मुण्डकोपनिषद - पृ. 228
2. द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे, मूर्तं चैवामूर्तंच सत्यं त्यच्च ।।
   बृहदारण्यकोपनिषद - 2/3/1
3. प्रो. प्रेमसागर - मध्यकालीन भक्त कवियों की ब्रह्म विषयक परिकल्पना - पृ. 2

इनके काव्य का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इनके काव्य का केन्द्र बिन्दु निर्गुण ब्रह्म ही है । निर्गुण ब्रह्म से इनका अभिप्राय उसी अव्यक्त परमात्मा से है जिसके आधार पर हिन्दी साहित्य में निर्गुणोपासक व सगुणोपासक का भेद किया गया, जिसे मूल रूप में दोनों ही स्वीकार करते है । सगुणोपासक तुलसी सगुण और निर्गुण को अभेद मानते हुए निर्गुण ब्रह्म ही भक्तों के प्रेम के कारण सगुण बन जाता है ।[1] और सूरदास उस अव्यक्त की गति अवर्णनीय, अकथनीय होने के कारण सगुण लीला का गान करते हैं ।[2] इन निर्गुणोपासक सन्तों ने उसी लीला का वर्णन नहीं किया । क्योंकि वे संकेत में सब कुछ कहना चाहते थे अत: संकेत में वे निर्गुण को समझाते है । कहीं-कहीं लीला का संकेत भी देते हैं । निर्गुण ज्ञान प्रधान है अत: निर्गुण का प्रतिपादन करते हुए भी वे सगुण ब्रह्म का वर्णन करते हैं । जो गुणों के भीतर आ गया वह साकार बन ही गया । "पुराणबुधवेदा" पुराण, बुद्धिमान और वेदों की साक्षी देते हुए तुलसी भी यही कहते हैं कि निर्गुण सगुण में कोई अन्तर नहीं । ये दोनों सन्त सगुण व साकार रूप को मानते है तो अवतार की भावना भी उन्हें मान्य ही है । उन्होंने अवतारवाद का खंडन नहीं किया अपितु उस एक सत्य को देखने की दिव्य दृष्टि प्रदान की । उन्होंने उपनिषदों की भाँति ब्रह्म के निर्गुणत्व का प्रतिपादन किया । जिस प्रकार उपनिषदों ने ब्रह्म को अकायम्, आदि नकारात्मक नेति नेति की शैली का अवलम्बन लेकर व्यक्त किया है नामदेव और कबीर भी उसी शैली में उस परमतत्त्व का वर्णन करते है ।

- -

1-सगुनहि अगुनहि नहि कछु भेदा ।
गावहि मुनि पुरान बुध बेदा ॥
अगुन अरुप अलख अज जोई ।
भगत प्रेम बस सगुन सो होई ।।
तुलसीदास - रामचरितमानस, बालकांड, 115

2-अविगत की गति कछु कहत न आवे
ताते सूर सगुन लीला पद गावे
सूरदास - सूर सागर - पद ।

निर्गुण ब्रह्म "राम"

निर्गुण ब्रह्म की धारणा मूलतः उपनिषदों और शांकर वेदान्त में पाई जाती है । नामदेव बड़े सीम में उस ब्रह्म को निर्गुण और स्वयं को गुणसहित कह उस भेद को स्पष्ट करते है ।

तू निर्गुण हैं गुणभरी[1] उपनिषदों का निर्गुण नाथपन्थियों द्वारा निरंजन कहा गया है । वे अवधूत को सम्बोधित कर कहते हैं कि वही निर्गुणयुक्त निरंजन ही अमरफलदाता है ।[2] अतः वे राम-नाम के जप करने के लिए कहते हैं ।[3]

कबीर भी "निर्गुण राम जपहु रे भाई[4] कहकर निर्गुण राम के जाप का उपदेश देते है । वे एक अन्य पद में जिह्वा को सम्बोधित करते हुए उसे राम के अमर रस का पान करने के लिए कहते हैं और उसे त्रिगुणातीत बताते है ऐसा "गुन अतीत" तत्त्व ही उनका निर्गुण ब्रह्म है ।[5]

नामदेव भी उसे त्रिगुणरहित मानते हैं वे "त्रिगुण रहत देव अन्तरजामी" अर्थात् वह अन्तर्यामी देव त्रिगुणरहित है । इस त्रिगुणात्मक संसार में रहते हुए भी वह ब्रह्म है । सत्त्व, रज व तमो गुणों से रहित है ।[6]

- -

1. सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - पद - 141
2. निरगुण जाई निरंजन लागी । भारीडू न भरैली -
   निराकार नामा तेरी वेली । अनन्त अमर फल देली
   वही पद 97 पृ॰ 44
3. जपी राम नाम नू ते उरी - वही - 182
4. कबीर ग्रन्थावली पद- 49
5. रसना राम गुन रमि रस पीजै ।
   गुन अतीत निरमोलिक लीजै ।।
   निरगुन ब्रह्म कथौ रे भाई, जा सुमिरत सुधि बुधिमति पाई ।
   कबीर ग्रन्थावली - पाई- पद 365
6. सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - पद 57

कबीर इसी त्रिगुणातीत का अधिक स्पष्टीकरण करते हुए कहते है वास्तव में गुण में निर्गुण और निर्गुण में गुण है पर लोग धोखे या भ्रम में पड़े हुए उसे अलग-अलग समझते हैं । वे सन्तों को चेतावनी देते है । इस धोखे की बात किससे कहूं ? लोग अपना रास्ता छोड़कर उद्देश को भूल भटक रहे हैं ।

सन्तो धोखा कासूं कहिए ।
गुण में निरगुण, निरगुण में गुण हैं,
बाट छाडि क्यूं बहिये ।[1]

कबीर के मत में सत, रज और तम ये सब उसकी माया है वह तो इनसे परे चौथे पद में है उसे पहचाननेवाले ही परमपद प्राप्त कर सके है ।

राजस तामस सातिग तीन्यूं, ये सब तेरी माया
चौथे पद को जो जन चीन्हें, तिन ही परमपद पाया ।[2]

इस प्रकार उस निर्गुण ब्रह्म को नामदेव "गुणरहित" व कबीर उसे त्रिगुणातीत चौथे पद का निवासी मानते है । कबीर ने उसे त्रिगुणातीत कह चौथे पद अर्थात् तुर्यावस्था में उस परमतत्त्व को पहचाना जा सकता है । इसी तुर्यावस्था में पहुंचकर ही भक्त परमपद् पाते है । जागृत स्वप्न, सुषुप्ति व तुर्यावस्था इनमें से अन्तिम अवस्था तुर्यावस्था है जिसमें सत्व,रज,तम किसी गुण की सत्ता नहीं रहती है । इन त्रिगुणों अर्थात् सत्व, रज, तमो गुण में से परे तुर्यावस्था है । मनुष्य इसी अवस्था के लिए तो जयशंकर प्रसाद ने कहा "चेतना लहर न उठेगी" उसी तुर्यावस्था में पहुंच भक्त को परमतत्त्व की अनुभूति होती है । उसी को कबीर ने चौथे पद की संज्ञा दी है । वही परमपद है, वही मुक्ति है ।

- -

1. कबीर ग्रन्थावली - पद 180

2. कबीर ग्रन्थावली - पद - 184 पृ. 150

परमतत्त्व

नामदेव उसी शैली में परमतत्त्व का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वह परमतत्त्व ऐसा है जिसका न कोई रूप है, न रंग, न रेख, न आकार । अतः वह अव्यक्त अकथनीय है ।[1] और आगे उसी नाद, बिन्दु रूप व रेखा रहित ब्रह्म का ध्यान करने के लिए कहते हैं ।[2] उनका ब्रह्म अलख निरंजन व दीनदयालु है ।[3] नामदेव व उस अविचल, अभय, अभेद व अलख ब्रह्म को प्रणाम करते हैं ।[4] कबीर भी परमतत्त्व को अव्यक्त बताते हुए "अविगत की गति लखी न जाई" अतः उस अव्यक्त की गति का वर्णन करने में असमर्थता व्यक्त करते हैं । क्योंकि वह "गुन अतीत" गुन बिहून" "निरगुन" व निराकार है ।[5] उस अलख निरंजन को कोई देख नहीं सकता वह तो इन्द्रिय से अगोचर है । वह न शून्य है और न स्थूल है, उसकी कोई रूप रेखा नहीं, वह तो दृश्यादृश्यातीत है ।[6] सब उसी अजरामर

- -

1. कहै नामदेव परमतत है ऐसा ।
   जाके रूप, न रेख वरण कहौ कैसा
   स० ना० हि० प० पद 76
2. नाद न बिंद रूप नहीं रेखा, ताकौ धरिये ध्यान ।
   वही, पद 138
3. अलख निरंजन दीनदयाला
   वही, पद 128
4. अविचल अभै नाराइन देव ।
   नामदेव प्रणवै अलख अभेव ।
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली पद - 44
5. अविगत की गति क्या कहूँ, जाकर गाँव न नाँव
   गुनबिहून का पेखिये, काकर धरिये नाँव
   कबीर ग्रन्थावली पृ० 239 रमैनी - 5
6. अलख निरंजन लखै न कोई । निरभै निराकार है सोई
   सुनि अस्थूल रूप नही रेखा । द्रिष्टि अद्रिष्टि छिप्यो नही पेखा ।
   वही पृ० 230 रमैनी - 3

कहते हैं पर वह तो अलख अकथनीय है । उसका कोई रूप, रंग नहीं पर वह सबके घट में समाया हुआ है ।[1] कबीर का वह निरंजन रूप, रेखा, मुद्रा व माया से अतीत है । नाद, बिंद, काल व काया से भी परे है । सृष्टि में जल आदि के अस्तित्व के पूर्व से ही उसकी सत्ता है ।[2]

सत्य, सर्वव्यापी

वही ब्रह्म एकमात्र अद्वितीय सत्ता है।[3] और वही एकमात्र परम सत्य है ।[4] उपनिषदों में वर्णित ब्रह्म के एकत्व की अनुभूति इन सन्तों को भी हुई थी । उपनिषदों के महावाक्यों का प्रतिबिम्ब ही उनके काव्य में स्पष्ट लक्षित होता है । ब्रह्म शब्द की व्युत्पत्ति से "बृह्" धातु के अर्थ के अनुसार नित्य शुद्ध, बुद्ध युक्त एवं सर्वव्यापक अर्थों की प्रतीति होती है ।

नामदेव उस सत्य राम की सत्ता को प्रतिपादित करते हुए जड़ चेतन, कीट-पतंगों सभी में उसकी सर्वव्यापकता को अनुभव करते हैं।[5] अन्य एक पद में वे स्पष्ट कहते हैं कि वही एक सर्वव्यापक, पूर्ण ब्रह्म है उसकी चित्रविचित्र माया से समस्त संसार विमोहित है पर कोई विरला ही उसे समझ सकता है।[6]

- -

1. अजरामर कथै सब कोई, अलख न कथणा जी
   नाति सरूप वरण नहीं जाके । घटि घटि रह्यौ समाई -
   कबीर ग्रंथावली, पद - 180
2. तेरे रूप नाहीं, रेख नाहीं, मुद्रा नाहीं माया ।
   नाद नाहीं ब्यन्द नाहीं, काल नाहीं काया ।
   - वही - पद- 219
3. "ब्रह्म एकमेवाद्वितीयम्" - छान्दोग्योपनिषद - 6/2/1
4. एकमेव सत् नेह नानास्ति किंचन - बृहदारण्यकोपनिषद, -3/8/8
5. स्थावर जंगम कीट पतंगा, सति राम सबहिन के संगा ।
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - 30 व 57
6. एक अनेक बिआपक पूरन, जत देखउ तत सोई ।।
   माइआ चित्रबिचित्र बिमोहित, बिरला बूझै कोई - वही, पद- 190

सिवै भूत नाना भेष, जब जाऊ तब तू ही देखूं" [1]
उन्हें सर्वभूतों में उसी एक मात्र सत्य के ही सर्वत्र दर्शन हो रहे हैं ।

नामदेव उस परमतत्त्व को राम और विठ्ठल नाम से संबोधित करते हुए उसे सर्वव्यापी कहते हैं । उस विठ्ठल के बिना इस संसार में कुछ भी नहीं, पृथ्वी के जल-थल, सभी स्थानों में वही विठ्ठल व्याप्त है ।[2] उनका राम घट-घट वासी[3] व दसों दिशाओं में व्याप्त है ।[4]

कबीर का घट-घट वासी ब्रह्म रूप, वर्णरहित है ।[5] पण्डित-जोगी राजा-रंक, वैरागी सभी में वही एक व्यापक ब्रह्म है ।[6] वही एकमात्र सत्य है । आत्म-दृष्टि के द्वारा सच्चे जन ही उस सत्य को पा सके हैं और उस एकमात्र सत्य को एक ही समझनेवालों को ही उस सत्य की उपलब्धि हुई है।[7] कबीर स्वानुभूति के आधार पर लोगों को उद्बुद्ध करते हुए कहते हैं कि उन्होंने उसे एकमात्र सत्य के रूप में ही जाना है । द्वैत समझनेवालों ने उसे

- -

1. सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली = पद- 12
2. "इभै वीठल उभै वीठल, वीठल बिन संसार नहीं ।
   थान थानंतरि नामां प्रणवै, पूरि रहिउ तू सरब मही ।
   - वही - पद- 61
3. थावरजंगम कीट पतंगा सब घटि राम समाना ।
   - वही - पद- 6
4. दहदिसि राम रह्या भरपूरि ।
   - वही - पद- 2
5. नातिसरूप वर्ण नाही जाके । घटि घटि रह्यौ समाई ।
   कबीर ग्रन्थावली, पद- 180
6. व्यापक ब्रह्म सबनि मैं एकै, को पंडित को जोगी ।
   - वही - पद - 186
7. जाके आत्मद्रिष्टि है साचा जन है सोई ।
   एक एक जिनि जाणिया, तिन ही सच पाया ।।
   - वही - 181

नहीं पहचाना । उसके सम्बन्ध में द्वैत भावना ही मिथ्या है ।[1]

सर्वान्तर्यामी

इन सन्तों का उपास्य मुख्य रूप से घट-घट वासी अन्तर्यामी ब्रह्म है ।

नामदेव उस सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी राम के समक्ष अपने मन की व्यथा प्रकट करते हैं । उनके अन्तर्यामी राजाराम दर्पण में मुख की भान्ति प्रतिबिम्बित है । वह सबके मन की व्यथा जाननेवाले है । उन्हें पानी में मुख के प्रतिबिम्ब के समान प्राणिमात्र के हृदय में उस ब्रह्म या विठ्ठल के दर्शन होते हैं ।[2]

कबीर की वाणी भी इसी भावना को जल के प्रतिबिम्ब के द्वारा ही अभिव्यक्त करती है ।

ज्यूं जल में प्रतिबिम्ब, त्यूं सकल रामहि जानी जे [3]

कबीर उस घट-घट वासी ब्रह्म की सर्वव्यापकता को कस्तूरी मृग के उदाहरण द्वारा समझाते हैं । मनुष्य अपनी अज्ञानतावश उस कस्तूरी मृग की भान्ति उसे बाहर ढूंढता है । वह तो हृदय स्थित आत्मब्रह्म या अंतर्यामी है।[4]

- -

1• हम तो एक एक करि जाना ।
दोइ कहै तिनहीं को दोजग, जिन नाहिन पहचाना ॥
कबीर ग्रन्थावली - पद - 55

2• ऐसो रामराई अन्तरजामी । जैसे दरपन मांहि बदन परवानी ।
बसै घट।घट लीप न छीपै । बन्धनमुक्ता जातु न दीसै ।
पानी मांहि मुख देखु जैसा । नामा को सुवामी बीठलु ऐसा ।
श्री शंकर गु• जोशी - पंजाबातील नामदेव - पृ• 58

3• कबीर ग्रन्थावली - विचार कौ अंग - दोहा - 9

4• कस्तूरी कुण्डल बसै मृग ढूंढै बन मांहि ।
ऐसे घट-घट राम है, दुनिया देखै नाहि ॥
कबीर ग्रन्थावली - कस्तूरिया मृग कौ अंग - दोहा - ।

वही उनका आत्माराम भी है ।[1]

नामदेव का स्वयंभू देव ही आत्माराम है जिसको दिव्य दृष्टि से ही पहचाना जा सकता है । वह आत्माराम के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है ।[2]

इससे यह स्पष्ट है कि इन दोनों सन्तों का उपास्य हृदय में स्थित ब्रह्म ही है । कबीर उसी अन्तर्यामी से मिलन के लिए व्याकुल है ।[3]

उपनिषदों में इसे सर्वभूतान्तरात्मा[4] आत्मरूप[5], पुरुषज्योति[6] तथा अन्तर्यामी[7] कहा गया है ।

इन सन्तों का आत्माराम या अन्तर्यामी ब्रह्म भक्तों का पालक व रक्षक भी है । अतः सन्तों ने इस ईश्वर से भाई, बन्धु, माता, पिता, सखा स्वामी, पति, प्रियतम आदि अनेक प्रकार के वैयक्तिक व सामाजिक सम्बन्ध भी स्थापित किये हैं । फिर भी वह ब्रह्म सर्वविवर्जित है, उसके मर्म को कोई नहीं जान सकता ।

- -

1. कौन विचारि करत हो पूजा,
   आतमराम अवर नहीं दूजा ।
   कबीर ग्रन्थावली, पद- 135
2. स्वयंभूदेव की सेवा जाने । सो दिवदिष्टी है सकल पिछाने ।
   नामदेव भणे मेरे यही पूजा । आतमराम अवर नहीं दूजा ।
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद- 20
3. हूँ तेरा पन्थ निहारूं स्वामी कब रे मिलहुगे अन्तरयामी ।
   कबीर ग्रन्थावली, पद- 224
4. कठोपनिषद् - 2/3/17
5. छान्दोग्योपनिषद् - 12/3
6. - वही - 3/7
7. माण्डूक्योपनिषद् - 6

सर्वविवर्जित, अनुपम

नामदेव और कबीर उस ब्रह्म को राम नाम से अभिहित करते हुए उसे नाम निशान रहित कहते हैं । उस वर्णन में भावसाम्य व शब्द साम्य उनकी समान धारणा की पुष्टि करता है ।

नामदेव का वह राम वेश, नाम-निशानरहित है । उसके मर्म को कोई नहीं जान सकता । वह ब्रह्म वेद, भेद, पाप, पुण्य, ज्ञान, शून्य, योग-युक्ति से विवर्जित अर्थात् परे हैं । बाह्याडम्बर, भिक्षा व दम्भादि साधनों से अप्राप्य है और वही सर्वव्यापी है ।[1]

थोड़े शब्द परिवर्तन के साथ कबीर भी राम को नाम और चिह्न से परे, भूख प्यास व गुण रहित कहते हैं वह अन्तर्यामी ब्रह्म वेद, भेद, पाप-पुण्य, ज्ञान, ध्यान, स्थूल, सूक्ष्म इन सबसे अतीत बाह्याडम्बरों से अप्राप्य सर्वव्यापी कहते हुए उसे "त्रैलोक्यविलक्षण अनुपम तत्त्व" की उपाधि से विभूषित करते हैं ।[2]

---

1. रामनाम नीसाण बागा । ताका मरम को जाने भागा ।
   वेद विवर्जिती भेद विवर्जिती । ज्ञान विवर्जित शून्य ।
   जोग विवर्जिती जुगति विवर्जिती । ताही नाही पाप पुण्य ।
   भोग विवर्जित भैरव विवर्जित । भिक्ष विवर्जित लीला ।
   नामदेव कहे आपहा आग ही । व्याप रहीर सकला ।।
   डा॰ मिश्र व मौर्य सम्पादित – स॰ना॰हि॰प॰ – पद, 183

2. राम के नाई नीसान बागा, ताका मरम न जाने कोई ।
   भूख त्रिषा गुण वाके नाही, घटि घटि अन्तरि सोई ।
   वेद विवर्जित भेद विवर्जित, विवर्जित पाप रु पुन्यं ।
   ग्यान विवर्जित ध्यान विवर्जित, विवर्जित अस्थूल सुन्यं ।
   भेष विवर्जित भीख विवर्जित, विवर्जित ड्यंभक रूपं ।
   कहै कबीर तिहूं लोक विवर्जित ऐसा तत्त अनूपं ।।
   कबीर ग्रन्थावली, पद- 220

कबीर उस अनुपम तत्त्व की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि उसका मुँह व माथा नहीं, उसका रूप भी नहीं, वह अरूप भी नहीं है । वह तो सूक्ष्मतम तत्त्व पुष्प की सौरभ से भी पतला है । यही अनुपम तत्त्व है ।[1]

इस निर्गुण परमतत्त्व को श्रुतियों में भी इसी प्रकार वर्णित किया गया है । वह मोटा भी नहीं, पतला भी नहीं, छोटा भी नहीं, बड़ा भी नहीं लोहित व स्नेह भी नहीं, छाया युक्त भी नहीं, अन्धकारमय भी नहीं ।[2] और वह शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धरहित है ।[3] गीता में उसे सर्वेन्द्रिय विवर्जितम् कहा है ।[4]

अगम

इसी कारण वह परमतत्त्व ब्रह्म या राम अगम और अपार है, इन्द्रियातीत है अत: नामदेव उसे सुनने की बात को "निपट झूठी" कहते है। उस अगम को जानेवाले ब्रह्म को पूछनेवाला पूछता ही रहेगा ।[5] क्योंकि अकथनीय होने से उस अगम की अनुभूति कागज पर लिखकर भी अभिव्यक्त नहीं की जा सकती ।[6] यही अगम और अपार ब्रह्म ही नामदेव की प्रिय पूँजी है।[7]

- -

1. जाके मुँह माथा नाही, नाही रूप अरूप ।
   पुहुप वास थे पातरा, ऐसा तत्त अनूप ।।
   कबीर ग्रन्थावली - पीव पिछाणन कौ अंग - साखी - 4
2. बृहदारण्यकोपनिषद् - 3/8/8
3. कठोपनिषद् - 3/15/5
4. गीता - अध्याय - 13 - श्लोक - 14
5. देख्यो कहूँ तो निपट झूठा । सुनी कहूँ तो झूठा रे ।
   नामदेव कहे जे अगम भेद । तो पूछ्या ही अन पूछ्या रे ।।
   डा० मिश्र व मौर्य सम्पादित - सं॰ना॰हि॰प॰ - पद-73
6. अकथ कथ्यो न जाई । कागद लिख्यो न माई । वही, पद - 8
7. यह पूँजी है अगम अपार - वही पद- 128

उसी स्वर को लिये हुए कबीर का कथन है कि सातों समुद्र की स्याही हो, वनराशि की कलम से उस हरि का गुण लिखने पर भी वह अपूर्ण ही रहेगा। वह अगम अगोचर है कबीर उसी ज्योति के चरणों की वन्दना करते हैं। जहाँ पाप पुण्य नहीं है।[1] वह अगम अगोचर गुणातीत तथा अवर्णनीय है। क्योंकि वह अव्यक्त अनुपम तत्त्व ही अनिर्वाच्य है।[2]

अनिर्वाच्य ब्रह्म

"अनिर्वाच्य ब्रह्म निगम म्हणती"[3] नामदेव निगम प्रतिपादित अनिर्वचनीय तत्त्व का वर्णन करना उस अल्प सामर्थ्य युक्त जीव के लिये अति कठिन मानते है क्योंकि उस ब्रह्म का जैसा कथन किया जाता है वैसा वह नहीं है।[4] उसकी गति वही जानने में समर्थ है अतः नामदेव की भाँति कबीर भी अपनी असमर्थता प्रकट करते हैं। वास्तव में कोई भी उस ब्रह्म के यथार्थ रूप को नहीं जानता।[5] सभी अपने सामर्थ्य व अनुभव के अनुसार उस ब्रह्म

- -

1. अगम अगोचर गमि नहीं, तहाँ जगमगै जोति।
   तहाँ कबीरा बन्दिगी, पाप पुन्य नहीं छोति॥
   कबीर ग्रन्थावली - परचा कौ अंग - साखी - 4
2. बाबा अगम अगोचर कैसा, ताते कहि समझावौ ऐसा।
   जो दीसै सो तो है वो नाहीं है सो कहा न जाई।
   सैना बैना कहि समझावौ, गूँगे का गुड़ भाई। - वही शब्द - 29
3. नामदेव गाथा - मराठी अभंग - 323
4. तेरी गति तू ही जाने अल्प जीव गति कहा बखाने।
   जैसा तू कहिये तैसा तू नाहीं। जैसा तू है तैसा आछि गुसाईं॥
   डा॰ मिश्र व मौर्य सम्पादित - स॰ना॰हि॰प॰ - पद - 14
5. जस कथिये तस होत नाहीं, जस है तैसा सोई।
   कहत सुनत सुख उपजै, अरु परमारथ होई॥
   कबीर ग्रन्थावली - रमैणी - 3 - पृ॰ 231।

का वर्णन करने का प्रयत्नमात्र करते हैं ।[1] कोई भी उसके सत्य स्वरूप को समझकर कहने में असमर्थ है । सन्त नामदेव व सन्त कबीर की अनुभूति की समानता के कारण विलक्षण शब्द साम्य दृष्टिगत होता है । ऐसे पदों को प्रक्षिप्त समझना भूल होगी । उस अनिर्वचनीय तत्त्व की अनुभूति के आनन्द को नामदेव ने "राम गुड़ मीठा" कह अभिव्यक्त किया है । वह तो गूँगे का "महाअमृत रस" है जिसका आस्वाद लेनेवाला ही जान सकता है पर कहने में असमर्थ है ।[2] वह रामरस ऐसा मीठा गुड़ है जिसका आस्वाद करनेवाला ही उसके गुणों को जान सकता है । वह सर्वमय राम तो अनुभवैकगम्य है ।[3]

कबीर को भी अपनी इस अनुभूति के आनन्द को "गूँगे का गुड़" कह अभिव्यक्त करना पड़ा ।[34] वह तो आनन्द तो गूँगे की मिठाई है जिसे गूँगा संकेतों से समझाने की कोशिश करता है और मन ही मन उस आनन्द को अनुभव करता है ।[5]

- -

1. जस तू तस तोहि कोई न जान ।
   लोग कहै सब आनहि आन । - कबीर ग्रन्थावली - पद - 47 - पृ॰ 103
2. गूँगे महा अमृतरस चाखिया, पूछे कहनु न जाई हो -
   डा॰ मिश्र व मौर्य संपादित - स॰ना॰हि॰प॰ = 153
3. गुड़ मीठा राम गुड़ मीठा
   जिनि लह्या तिनि गुन दीठा। - वही पद - 88
4. ऐसा कैसा कहि समझावौं, गूँगे का गुड़ भाई ।
   कबीर ग्रन्थावली - शब्द - 27
5. अविगत अकथ अनूपम देख्या कहता कहा न जाए
   सैन करे मन ही मन रहै, गूँगे जानि मिठाई ।
   कबीर ग्रन्थावली - पद - 6

इस प्रकार दोनों ने ही ब्रह्मानन्द को "गूंगे का गुड़" का परम्परागत वर्णन की ही पुष्टि की है ।

अनिर्वचनीय तत्त्व रूप निर्गुण ब्रह्म का वर्णन नामदेव और कबीर ने विश्वोत्पत्ति के पूर्व की अवस्था के वर्णन द्वारा भी किया है । वेद के नासदीय सूक्त में भी सृष्टिपूर्व की अवस्था का विवेचन मिलता है । परमतत्त्व के इस रूप वर्णन द्वारा उसकी निष्क्रियावस्था व अनिर्वचनीयता ही सिद्ध होती है ।

नामदेव उस परमतत्त्व के दर्शन सद्गुरु की कृपा से कर सके अतः उनको प्रणाम करते हुए उसे शाश्वत व अनादि सिद्ध करते हैं ।[1]

कबीर भी उसी स्वर में सृष्ट्योत्पत्ति के पूर्व भी उसकी सत्ता मानते हुए उसे अव्यक्त कहते हैं ।[2] उस अव्यक्त की गति कैसे कही जाए उसका नाम नहीं, ग्राम नहीं, उस "गुण विहून" को किसी ने देखा भी नहीं तब उसका नाम ही कैसे दिया जाय ?[3]

---

1. चन्द् न होता सूरु न होता, पानी पवनु मिलाइआ ।
   सासतु न होता वेदु न होता करमु कहाँ ते आइआ ।।
   खेचर भूचर तुलसी माला गुरपरसादी पाइआ ।
   नामा प्रणवै परमततु है सतिगुरु होइ लखाइआ
   डा० मिश्र व मौर्य सम्पादित सं०ना०हि०प० = पद- 209
2. जब नहीं होते पवन नहीं पानी ।
   जब नहीं होती सृष्टि उपानी ।।
   जब नहीं होते पिंड न बासा ।
   तब नहीं होते धरनि आकासा ।।
   जब नहीं होते गुरु न चेला ।
   गम अगमै पन्थ अकेला । - कबीर ग्रन्थावली - रमैणी पृ० 239
3. अविगत की गति क्या कहूँ, जस कर गाँव न नाँव ।
   गुनविहून का पेखिये, काकर धरिये नाँव
   कबीर ग्रन्थावली - रमैणी - 5

आगे कबीर ने उपनिषदों की विभावनात्मक शैली में उसका वर्णन किया है उनका निर्गुण ब्रह्म बिना मुख के भोजन व बिना चरण के गमन करता है । बिना जिह्वा के गुणों का गान व दसों दिशाओं में फिरता है । जहाँ उस नन्दलाल का निवास है वहाँ बिना ताल के मृदंग, बिना शब्द के अनाहद नाद होता है । वह आहारी होते हुए भी सदा संग रहता है । दास कबीर के मत में उसके इस रूप को विरला महाज्ञानी ही जान सकता है ।[1] श्वेताश्वतरोपनिषद में इस भाव को व्यक्त किया है ।[2]

नामदेव के हिन्दी पदों में हमें इस प्रकार के वर्णन अप्राप्य है ।

अद्वैत ब्रह्म

दोनों ही कवियों ने अद्वैत ब्रह्म की सत्ता को उपनिषदों व वेदान्त की धारणा के अनुसार स्वीकार किया है । अद्वैतवाद की समर्थक "ब्रह्म सत्यं सर्वं खल्विदं ब्रह्म, एकं सद्विप्रा: बहुधावदन्ति" इन महावाक्यों का प्रतिबिम्ब ही इनके काव्य में दिखाई देता है ।

"सभु गोविन्द है सभु गोविन्द है गोविन्द बिनु नहि कोई "

1• बिनु मुख खाई,चरन बिन चाले,बिनु जिभ्या गुण गावै ।
आछै रहै ठौर नहीं छाडै दह दिसि ही फिरि आवै ।।
बिन ही ताली ताल बजावै बिन मंदल षटताला ।
बिन ही सबद अनाहद बाजै जहाँ निरत है नन्दलाल ।
बिन चोलने बिन कंचुकी बिन ही संगसंग होई ।
दास कबीर औसर भल देख्या जाणैगा जन कोई ।
कबीर ग्रन्थावली - पद - 159

2• अपाणिपादो जवनो ग्रहीता, पश्यत्यचक्षु:स शृणोत्यकर्ण:
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहु: ग्रन्थं पुरुषं महान्तम् "
श्वेताश्वतरोपनिषद - 3/19

नामदेव की ये काव्याभिव्यक्तियाँ "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" की भाषान्तर ही प्रतीत होती है। वे उस सर्वमय ब्रह्म को अनेक मणियों में पिरोए एक सूत्र की भान्ति सम्पूर्ण विश्व में ओतप्रोत कहते हैं ।[1]

गीता में भी इसी भाव की अभिव्यक्ति उपरोक्त उदाहरण द्वारा ही हुई है ।[2]

कबीर भी सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को उस एक पूर्ण तत्व द्वारा व्याप्त मानते है और उसी अन्तर्यामी को नेत्रवत् देखते हैं ।[3] वे जीवात्मा और जगत् की पृथक सत्ता नहीं मानते अपितु वे उस एक अद्वैत तत्व के विभिन्न रूप हैं ।

दोनों ही कवि अण्डज, स्वेदज, कीट पतंगों में व्याप्त उस अद्वैत का वर्णन करते हैं । नामदेव के अनुसार सृष्टि के हाथी से लेकर चींटी तक सभी प्राणियों का सृजन उसने एक ही मृत्तिका तत्व से किया है ।[4] ये जीव बर्तन की भान्ति बाह्याकार में भिन्न हैं पर तत्व एक ही है ।[5]

- -

1. सभु गोविन्दु है सभु गोविन्दु है गोविन्दु बिनु नाहि कोई ।
   सूत एक मणि सत सहस जैसे ओतिप्रोति प्रभु सोई ।।
   डा॰ मिश्र व मौर्य – स॰ना॰हि॰प॰ = पद– 150
2. मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव । – गीता – 7/7
3. एक सकल ब्रह्मांड तै पूरिया अरु दूजा नहिधान जी
   मैं सब घटि अन्तरि पेखिया, जब देख्या नैन समान जी ।
   कबीर ग्रन्थावली–पद – 30
4. एकल माटी कुंजर चीटी भाजन है बहु नाना ।
   थावर जंगम कीट पतंगा, सब घटि राम समाना
   डा॰मिश्र व मौर्य – स॰ना॰हि॰प॰ = पद– 6
5. थावर जंगम कीट पतंगा, अनेक जन्म किये बहुरंगा ।
   श्री श्यामसुन्दर दास – कबीर ग्रन्थावली – पद – 14

कबीर इसी बात को अधिक विस्तार से समझाने के लिए उस स्रष्टा को कुम्हार की उपमा देते हैं ।[1] एक ही पवन, पानी और ज्योति से ज्योतित इस संसार का स्रष्टा एक ही अद्वैत है जिसने भिन्न योनियों में भिन्न-भिन्न रूपों में विविध पात्रों का सृजन एक ही तत्व मृत्तिका द्वारा किया है।[2]

कबीर अन्य एक पद में काष्ठ में व्याप्त अग्नि के उदाहरण द्वारा इस बात को अधिक स्पष्ट करते हैं । जैसे बढ़ई लकड़ी को काटता है पर उसमें व्याप्त अग्नि को नहीं, उसी प्रकार घट-घट में व्यापक ब्रह्म ही सर्वभूतों में अनेक रूप धारण करता है ।[3]

यह सृष्टि उस अनन्त ब्रह्म की इच्छा का परिणाम है । उस अद्वैत ब्रह्म की "एकोऽहं बहुस्याम्" की भावना को नामदेव ने "तू एक अनेक है विस्तर्यो"[4] द्वारा प्रकट किया है । नामदेव ने "सरब रूप सरवेसर स्वामी"[5] कह वेदों के सर्ववाद का समर्थन किया है । उसी से सकल जीवों की उत्पत्ति हुई है और वही सकल जीवों में व्याप्त है ।[6]

- -

1. माटी सकल संसारा, बहुविध भाड़े घड़े कुंभारा ।।
   कबीर ग्रन्थावली, पद- 53
2. एके पवन एक ही पानी, एक जोति संसारा ।
   एक ही खाक घड़े सब भाँडे, एक ही सिरजनहारा ।
   - वही - पद, 55
3. जैसे बाढ़ी काष्ट ही काटै, अगिनि न काटै कोई ।
   सब घटि अन्तरि तू ही व्यापक, धरै सरूपै सोई ।
   - वही - पद - 55
4. डा० मिश्र व मौर्य - स०मा०वि०प० = पद-53
5. - वही - पद- 57
6. जामे सकल जीव की उतपति । सकल जीव में आप जी ।
   माया मोह करि जगत भुलाया । घटि घटि व्यापक आपजी ।
   वही - पद- 48

इस अद्वैत तत्व को नामदेव और कबीर दोनों ने ही बाजीगर की उपमा दी है । यह विश्व उस बाजीगर का तमाशा भर है । खेल समाप्त होने पर बाजीगर रूपी ब्रह्म खेल समेट लेता है । वही एक अद्वैत तत्व शेष रह जाता है । अर्थात् प्रलय के पश्चात् यह दृश्य जगत् परमात्मा में ही लय हो जाता है ।[1]

तीनों लोकों में व्याप्त वही एक मात्र सत्ता है ।[2] क्योंकि वही सूत्र भी है सूत्रधारी भी है ।[3] वह तो अद्वैत तत्व है पर झूठे भ्रम में पड़कर ही लोग उसको द्वैत समझते हैं । परब्रह्म में द्वैतभावना मूर्खता है भ्रम है ।[4] इस तरह नामदेव स्पष्ट रूप में उस अद्वैत तत्व का ही प्रतिपादन करते है ।

कबीर भी द्वैत भावना को "भरम का भेद" कह लोगों को चेतावनी देते हुए [5] "खालिक में खलक व खलक में खालिक द्वारा अद्वैत तत्व का

- -

1. (क) भाई रे भरम गया, भौ भागा, तेरा जन कहाँ का तहाँ लागा ।
   कि बाजीगर डाक बजाई । सब दुनी तमासे आई ।।
   बाजीगर खेल सकेला । तब आपै रहौ अकेला ।।
   डा॰ मिश्र व मौर्य - स॰ना॰हि॰प॰ = पद - 72
   (ख) हमारा भर्म गया, भय भागा । जब राम नाम चितु लागा ।
   बाजीगर डंक बजाई । सब खलक तमासे आई ।
   बाजीगर स्वांग सकेला । अपने रंग रवै अकेला
   श्री श्यामसुन्दरदास - क॰ग्रं॰ = परिशिष्ट - पद - 116
2. तीनो रे त्रिलोक व्यापै दूजो नहि कोई - स॰ना॰हि॰प॰ = 89
3. आपै सूरात आपै सूत्रधारी - स॰ना॰हि॰प॰ = पद - 40
4. नामदेव म्हणे परब्रह्म नाम । द्वैत क्रिया कर्म नाही तेथे ।
   नामदेव गाथा - मराठी अभंग ८१९
5. अरे भाई दोइ कहाँ सो मोहि बतावो,
   विचहि भरम का भेद लगावो ।।
   श्री श्यामसुन्दरदास - क॰ग्रं॰ = पृ॰-104 - पद - 56

स्पष्टीकरण करते हैं ।[1]

उस परमतत्व के अद्वैतत्व के प्रतिपादनार्थ दोनों ही कवियों ने परम्परागत जल-तरंग न्याय, तथा जल व कुम्भ के उदाहरणों का प्रयोग किया है ।

नामदेव जल और तरंग, फेन और बुलबुले की भांति यह प्रपंच उस परब्रह्म की ही लीला मानते है । विश्व में उसी का विवरण है ।[2] इसी बात को वे जल और कुम्भ के उदाहरण द्वारा समझाते हुए इस विश्व को राममय मानते है ।[3]

कबीर भी "लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल" [4] सम्पूर्ण-विश्व में उसकी लालिमा के दर्शन करते हुए पानी और हिम के रूपक द्वारा उसके अभेदत्व को समझाते हैं ।[5] पानी और बर्फ में एक ही अभेद तत्व के दर्शन करने वाले इन सन्तों ने निर्गुण ब्रह्म को कार्यकारण की शृंखला से परे कहा है ।

नामदेव इस सृष्टि के स्रष्टा को "एक सयाना माली" कहते हैं जो सबके अन्तरतम में छिपा हुआ है वही बाग, वही माली, वही पवन, पानी, मेघ

- -

1. लोका जानि न भूलो भाई ।
   कबीर ग्रन्था.
   खालिक खलक खलक में खालिक सब घट रह्यो समाई । – वही पद-51
2. जल तरंग अरु फेन बुदबुदा, जल ते भिन्न न कोई ।
   इहु परपंचु पारब्रह्म की लीला, विचरत आन न होई
   डा॰ मिश्र व मौर्य – स॰ना॰हि॰ प॰ = पद – 150
3. जल भीतरि कुंभ समानिआ ।
   सभु राम एकु करि जानिआ । – वही पद – 154
4. कबीर ग्रन्थावली – साखी – 48 पृ. 98
5. पाणी ही ते हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाई ।
   जो कुछ था सोइ भया, अब कुछ कहा न जाई ।
   श्यामसुन्दर दास – कबीर ग्रन्थावली – साखी – 17

है । वही सूर्य, चन्द्र, धरती, आकाश सभी वही है । उसकी सृष्टि में उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं ।[1] वही अद्वैत है ।

कबीर ने उपरोक्त भाव की पुष्टि "आपे गुरु आप ही चेला" तथा "आपे गावे आपे बजावे" द्वारा की है । कबीर अत्यन्त सोच विचार के पश्चात इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि वह निराकार ही "रमिता राम" है ।[2] सत्व रज, तम से माया युक्त जग की सृष्टि की है । इसके भीतर वही छिपा है ।[3]

---

1. माधौ माली एक सयाना । अन्तरिगत रंगक लुकाना ।
आपे बाडी आपे माली । कली कलीकर तोडे ।
आपे पवन आप ही पाणी आपे करिवे मेहा ।
आपे पुरिष नारि पुनि आपे आपे नेह सनेहा ।।
आपे चन्द सूर पुनि आपे आपे धरनि आकासा ।
रचनहार विधि ऐसी रचि है प्रणवे नामदेव दासा ।
स॰ न॰ हि॰ प॰ , पद - 110

2. नाद बिंद रंक एक खेला, आपे गुरु आप ही चेला ।
आपे मंत्र आपे मंत्रेला, आपे पूजे आप पुजेला ।।
आपे गावे आप बजावे, अपना कीया आप ही पावे
आपे धूप दीप आरती, अपनी आप लगावे जाती
कहै कबीर विचार करि झूठा लोहि धाम
जो या देही रहित है सो है रमिता राम ।।
— कबीर ग्रन्थावली, बावर पदी रमैणी - पृ॰ 244

3. सत रज तम थै कीन्हीं माया, आपण मांझै आप छिपाया
— कबीर ग्रन्थावली, सप्तपदी रमैणी, पृ॰ 225

इस प्रकार इन दोनों ही कवियों ने निर्गुण ब्रह्म की अद्वैत सत्ता का प्रतिपादन किया है उन्होंने जग को ब्रह्म की माया कहा है अतः उन्हें अद्वैतवादी कह सकते हैं पर उनका अद्वैतवाद शास्त्रों व तर्कों पर आधारित नहीं, स्वानुभूति पर आधारित है। इन सन्तों ने भक्तिभावना के सहज आवेग में उस अद्वैत का अनुभव अणु-परमाणु में करने से उसमें भावों की प्रधानता है अतः उसे "भावमूलक अद्वैतवाद" की संज्ञा दी जा सकती है।[1] यह अद्वैतवाद तत्व निराकार है।

निराकार

"निराकार नामा तेरी सेवी"[2] कह नामदेव उसे मन्दिर व मस्जिद की सीमा से परे कहते हैं। नामदेव का सेव्य सीमातीत है।[3]

कबीर भी उसी भाव का समर्थन करते हुए उस एक निराकार को हृदय में नमस्कार करते है। उसके लिए पूजा व नमाज व्यर्थ है[4]। और हिन्दू और मुसलमानों द्वारा उस निराकार ब्रह्म को मन्दिर व मस्जिद की सीमा में बाँधने का खंडन करते हैं।[5]

---

1. डा॰मोतीसिंह – निर्गुण साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि – पृ॰ 177
2. निराकार नामा तेरी सेवी। अकल अमर कम देली
   डा॰मिश्र व मौर्य – स॰ना॰हि॰प॰ – पद–97
3. हिन्दू पूजै देहुरा मुसलमाणु मसीदा
   नामा सोई सेविआ, जहाँ देहुरा न मसीत॥ – वही पद – 208
4. पूजा करूँ न निमाज गुजारूँ। एक निराकार हिरदै नमस्कारू
   श्यामसुन्दरदास – क॰ग्रं॰ = पद – 338
5. तुरक मसीति, देहुरै हिन्दू दुहूठा राम खुदाई
   जहाँ मसीति देहुरा नाही, तहाँ काकी ठकुराई।
   वही – कबीर ग्रन्थावली = पद-58

वह अनन्त असीम है, अतः सगुण निर्गुणातीत है ।

सगुण - निर्गुणातीत

वह अव्यक्त, अविनाशी, अनादि, अनन्त विशेषताओं से युक्त निर्गुण, निराकार ब्रह्म है । नामदेव के मत में सगुण और निर्गुण एक है तो कबीर के विचार में वह सगुण निर्गुणातीत है ।

"सगुण - निर्गुण एकुरे गोविन्दु" कह उसकी एकात्मकता को प्रतिपादित करनेवाली मराठी सन्तों की भूमिका के अनुरूप नामदेव ने सगुण निर्गुण को एक ही माना है ।

एक मराठी अभंग में नामदेव कहते हैं कि वह सगुण भी नहीं, निर्गुण भी नहीं पर भक्तों को वह साकार रूप में उपलब्ध हुआ है । उस एकत्व को वे जल और हिम, सुवर्ण व सिक्के के उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हैं । पांडुरंग ही जग है और जग ही पांडुरंग है । पर मूलतः वह तत्व निराकार ही है ।

कबीर का अनुभव अत्यन्त व्यापक था, उसे निर्गुण कहना भी गुण सापेक्षित है । उसे द्वन्द्व युक्त व सीमित करना है । सीमा का ध्यान रखकर ही कबीर उसे सगुणनिर्गुणातीत कह समस्त द्वन्द्वों से परे कहते हैं । वास्तव में गुण में ही निर्गुण और निर्गुण में ही गुणों को मानकर हम असली मार्ग से भटक जाते हैं । लोग उसे अजर,अमर कहते हैं पर वस्तुतः वह अलख है । वह वर्ण व स्वरूपरहित - सर्वव्यापी ब्रह्म, अनादि व अनन्त है उसे पिंड और ब्रह्माण्ड में विद्यमान कहना भी उसे देशकाल में सीमित करना है । उनके हरि का

- -

1. "निर्गुण सगुण नाही ज्या आकार होउनि साकार तोचि ठेला ।
   जळी अगार दिसे जैसा परी । तैसा निराकारी साकार हा ।
   सुवर्ण की लेणं,लेणं की सुवर्ण । निर्गुण सगुण व्यापारी ।
   पांडुरंगी जैसी सर्व व्यापे जग । जिवची जग सवांगि नामा म्हणे।नामदेवा मत्ता
   नामदेव गाथा - मराठी अभंग - 329

स्वरूप पिंड और ब्रह्माण्ड से परे है ।[1] अतः कबीर उसे सगुण निर्गुण कहना ऊपरी व्यवहार मानते हैं । कबीर के आराध्य ईश्वर सगुण निर्गुणातीत है।[2]

कबीर की भांति नामदेव की हिन्दी रचनाओं में इन पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग कर सगुण निर्गुण का विवेचन नहीं मिलता । उसका कारण मराठी सन्तों की सगुण निर्गुण के एकत्व की धारणा ही हो सकती है । पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग न होने पर भी तथ्य एक ही है ।

निर्गुण शब्द का स्पष्ट प्रयोग न कर दूसरे शब्दों के माध्यम से सन्त नामदेव और सन्त कबीर ने उसके शून्य व सहज रूप, निरंजन, ज्योतिस्वरूप, शब्द रूप व आश्चर्यमय रूपों की अनुभूति को वाणी प्रदान की है । उसी निर्गुण के स्वरूप का अन्य शब्दों द्वारा भी निरूपण किया है ।

"शून्य" व "सहज"

बौद्ध मत की महायान शाखा में चारो कोटियों से विलक्षण या विनिर्मुक्त तत्त्व ही शून्य कहा गया है । यही माध्यमिकों का परमतत्त्व है।[3]

- -

1. सन्तो धोखा कासूं कहिये
गुण में निरगुण निरगुण में गुण है, बाट छाडि क्यूं बहिये ।
अजरामर कथै सब कोई, अलख न कथणा जाई ।
नाति सरूप वरण नहीं जाके घटि घटि रह्यौ समाई ।
प्यंड ब्रह्मांड कथै सब कोई, वाके आदि अरु अन्त न होई
प्यंड ब्रह्मांड छाडिये कथिये, कहै कबीर हरि सोई ।।
श्यामसुन्दरदास - कबीर ग्रन्थावली - पद - 180

2. श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय - कबीर वचनावली - पृ. 94

3. न सन्नासन्न चा प्यनुभयात्मकम् ।
चतुष्कोटि वि निर्मुक्तं तत्वं माध्यमिका विन्दु 3

महान् बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन के अनुसार वह शून्य, अशून्य व शून्याशून्य से परे है ।[1] पर वह अभावात्मक नहीं । इस प्रकार "शून्य" एक भावात्मक अर्थ में निर्गुण ब्रह्म के लिए व्यवहृत होता है । बौद्ध सिद्धों के साहित्य में भी शब्दातीत व इन्द्रियातीत तत्त्व को "शून्य" कहा है । बौद्ध सिद्धों और नाथों की परम्परा से ही शून्य, सहज, निरंजन नाद-बिन्दु खसम आदि शब्द सन्त साहित्य में कुछ अर्थ विपर्यय के साथ प्रयुक्त किये गये हैं ।[2]

सहजयानी सिद्धों और नाथपन्थी योगियों ने "शून्य" व "सहज" शब्द का एक साथ व्यवहार किया है । उसी परम्परा में नामदेव और कबीर ने भी सहजशून्य का एक ही साथ प्रयोग किया है ।

नामदेव ने शून्य को "सुंनि" शब्द से व्यक्त किया है । नामदेव का "सहजशून्य" ही "सत्य ब्रह्म" है । उसी का ध्यान करने के लिए कहते हैं जिसकी प्रतीति उन्हें गुरु कृपा से हुई ।[3] और विरले योगियों को प्राप्य उस सहजशून्य को अन्तरात्मा में अनुभव करने और उसी में मन को विराम देने की बात कहते हैं।[4]

- -

1. शून्यमिति न वक्तव्यं न वक्तव्यं अशून्यमिति वाम्भेद
 उभयं नोभयं नैव प्रज्ञप्त्यर्थं तु कथ्यते – { माध्यमिक शास्त्र, नागार्जुन }
 डा॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी – कबीर – पृ॰ 84 से उद्धृत

2. हजारी प्रसाद द्विवेदी – कबीर – पृ॰ 85

3. केवल ब्रह्म नलिकरि जाण्या ।
 सहज सुंनि मैं ध्याया रे ।
 प्रणवत नामदेव गुरु प्रसादे ।
 पाया तिन ही लुकाया रे ।
 डा॰ मिश्र व मौर्य – स॰ ना॰ हि॰ प॰ = 64

4. गगन मण्डल मैं रहनि हमारी । सहजसुंनि गृह मैला ।
 अन्तर सुंनि मैं मन बिलमाऊं । कोई जोगी या गम लहैला ।।
 डा॰ मिश्र व मौर्य – स॰ना॰हि॰प॰ = पद-65

उनका सहज ब्रह्म "राम" ही है । राम नाम रूपी अमृत को पीने की सलाह देते हैं ।[1]

कबीर का भी सहजशून्य राम है । सहजशून्य में उन्हें जिस रामरस के आस्वाद का अवसर सतगुरु की कृपा से प्राप्त हुआ है उसे पीते हुए वे अघाते नहीं ।[2]

कबीर के अनुसार उस सहज शून्य का स्वरूप वर्णहीन, धूप और छाया से परे है । गुरु की शरण में जाने से उस अव्यक्त अटल, अमर सहजशून्य ब्रह्म को पाया जा सकता है । उसे जाननेवाला ही उस सहज शून्य में समा जाता यही सहजसमाधि है ।[3]

कबीर का यह सहज राम भावाभावविनिर्मुक्त है, उदय,अस्त, उत्पत्ति व मरण से परे है । उसकी लौ में ही कबीर लीन है ।[4]

दोनों का निर्गुण ब्रह्म राम ही सहजशून्य है, निरंजन है ।

- -

1. निरषि मृवाण पद रामनाम लीजे ।
   आत्मा अँगि लगाई । लैकिो सहज भाइ ।
   भगत नामदयो छीपो अमृत पीजे । - वही पद- 9। स. ना. हि. प.
2. सहज सुनि मैं जिनि रस चाख्या, सतगुरु थे सुधि पाई ।
   दास कबीर इहि रसमाता, कबहूँ उछकि न जाई ।
   श्यामसुन्दरदास - क. ग्र. - पद- 74
3. अवरन बरन धाम नहीं छाम । अवरन पाइये गुर की साम ।
   टारी न टरे आवै न जाई । सुन्न सहज महि रह्यौ समाइ ।
   कबीर ग्रन्थावली - परिशिष्ट, पद- 16
4. कह्या न उपजे उपजा नहि जाणे भाव अभाव बिहूना
   उदै अस्त जहा मति बुधि नाही सहजि राम ल्यौ लीना ।
   वही पद - 179

निरंजन रूप ब्रह्म

कबीर व नामदेव ने अनेक बार अपने परमाराध्य को निरंजन कहा है। इस निरंजन रूप की अनुभूति उन्हें सहज समाधि द्वारा हुई है।

मध्य युग के योग, मन्त्र व भक्ति के साहित्य में निरंजन शब्द का बारंबार उल्लेख मिलता है। साधारण रूप से यह शब्द निर्गुण ब्रह्म का तथा विशेष रूप से शिव का वाचक है।[1]

नाथ पन्थ में निरंजन की बड़ी मान्यता है। जो निर्गुण ब्रह्म का ही पर्यायवाची है उसी परम्परा से सन्तसाहित्य में स्वीकृत निरंजन शब्द के इतिहास का विस्तृत विवेचन डा॰ हजारीप्रसाद द्विवेदी ने किया है। उस युग में जब अलखनिरंजन का नारा लगाकर ढोंगी साधु प्रजा को धोखा दे रहे थे। तब से निरंजन हेय दृष्टि से देखा जाने लगा और इसी कारण आगे चलकर निरंजन शब्द शैतान का वाचक बन गया।[2]

नामदेव का निरंजन अलख है, दीनदयालु है।[3] वही राजाराम है, परमतत्व निर्गुण ब्रह्म है।[3] वह निरंजन अनेक सूर्यों की ज्योति के समान ज्योतिर्मय है जिसे पाकर नामदेव अपने जीवन को कृतार्थ समझते हैं[5]। वह निर्गुण ही माया रहित निरंजन से युक्त हो गया है।[6] वे लोगों को चेतावनी देते हुए कहते हैं कि अलख, अगोचर, अन्तर्यामी उस एक निरंजन को अजामलादिक दशावतारों, मूर्ति

---

1. डा॰ हजारीप्रसाद द्विवेदी - कबीर - पृ-64
2. डा॰ हजारीप्रसाद द्विवेदी - कबीर - पृ-64 से 80
   . दृष्टव्य - "निरंजन कौन है" लेख
3. अलख निरंजन दीनदयाला - स॰ना॰हि॰प॰ - 128
4. सेवो राजा राम निरंजन - वही - पद-108
5. अनेक सूरज मिलि उदै कियो है ऐसी जोती प्रकासी
   तहाँ निरंजन अंजन भौले। बैकुण्ठवासी - वही पद - 164
6. निर्गुण जाय निरंजन लागी - वही पद - 97

में देखते हो । उसकी माया को समझकर नामदेव उस मायारहित निरंजन का ध्यान करते हैं ।[1]

कबीर ने उस निरंजन को रूप, रेखा, मुद्रा, माया से रहित अनादि व अविनाशी तत्व के रूप में वर्णित किया है । वही निर्गुण राम है।[2] कबीर उसी घट-घट वासी राम रूपी निरंजन का ध्यान करने के लिए कहते हैं । यह सकल संसार का प्रसार ही अंजन है, वह निरंजन ब्रह्म इन सबसे न्यारा है ।

राम निरंजन न्यारा रे, अंजन सकल पसारा रे ।[3]

इस प्रकार नामदेव और कबीर दोनों ही मायारहित रूप को निरंजन कहते हैं । वही अनादि, निर्गुण तत्व राम है । कोटि सूर्यवत्, ज्योति-स्वरूप ब्रह्म की अनुभूति भी इन दोनों को हुई थी ।

- -

1. कुल बीणी दस औतार बखाणे
   अकल अगोचर एक न जाणे ।।
   भुवा अम पाषाण पुजीला ।
   अन्तरजामी उरि न सुझीला ।
   जन नामदेव निरखि निरंजन ध्यावै
   अंजन आवै जाइ न भावै ।
   डा॰ मिश्र व मौर्य - स॰ ना॰ हि॰ प॰ - पद-134
2. गोब्यंदे तू निरंजन तू निरंजन तू निरंजन राया ।
   तेरे रूप नाही रेख नाही, मुद्रा नही माया ।
   नाद नाही ब्यंद नाही काल नही काया ।
   जब ते जल ब्यंद न होते तब तू ही राम राया ।
   कबीर ग्रन्थावली - पद- 219
3. वही - पद - 336

ज्योतिस्वरूप ब्रह्म

इन दोनों कवियों ने प्रकाश पुंज ज्योतिस्वरूप ब्रह्म की झलक देखी है । नामदेव उस झलक को "झिलमिल तारा" कह अभिव्यक्त करते हैं । वह तीनों लोकों में प्रिय,व आकाशवासी पर अगोचर, अग्राह्य है । वह दीपक बिना तेल व बाती के अखण्ड रूप से जल रहा है । उसी ज्योति रूप परमतत्व के दर्शन कर नामदेव को अमरपद का स्पर्शमात्र हुआ है । जिससे उन्हें मुक्ति मिली ।[1]

सन्त कबीर को भी उसके एक अंग की झलक के दर्शन हुवे हैं और वह उनके नेत्रों में समा गया है ।[2] कबीर उस अनन्त ब्रह्म के तेज को सहस्त्रों सूर्यों की ज्योति के समान अनुभव करते[3]उस पारब्रह्म के तेज का अनुमान नहीं लगाया जा सकता, वह तो साक्षात्कार का विषय है, देखना ही प्रमाण है ।[4]

---

1. झिलमिल झिलमिलि झिलमिलि तारा ।
   सो झिलमिलतिहु लोक पियारा ।।
   रहे अकास पडे नहीं दिष्टी ।
   पकड्या जाइ न आवे मुष्टी ।।
   दीपक यहै तेल बिन बाती ।
   जोतिरूप बले दिन राती ।।
   भगत नामदेव अमरपद परस्या ।
   पिंड भया मुकति तथा तत दरस्या ।।
   डा॰ मिश्र व मौर्य - स॰ना॰हि॰प॰ = पद - 107
2. कबीर देख्या एक अंग, महिमा कही न जाइ ।
   तेजपुंज पाणी, नैनु रहा समाई ।।
   कबीर ग्रन्थावली - परचा को अंग - सा॰ 38
3. कबीर तेज अनन्त का मानो उगी सूरज सेणि
   वही - सा॰ ।
4. पारब्रह्म के तेज का कैसा है उनमान ।
   कहिबे कूं शोभा नहीं, देख्या ही परवान ।।
   कबीर ग्र॰ - परचा को अंग - सा॰ 3

कबीर का ज्योतिस्वरूप ही अनुपम परमतत्त्व है, जो मलामल तथा धूप व छाँह से अप्रभावित है ।[1]

शरीर के दसवें द्वार में उस ज्योतिस्वरूप ब्रह्म की अनुभूति कबीर को हुई थी अतः वे भक्तों को उसे पहचानने के लिए प्रेरित करते हैं ।[2] शरीर में ब्रह्मरन्ध्र को दसवाँ द्वार कहा जाता है, क्योंकि वही परमदेव का स्थान है । ऐसा ही भाव वेद मन्त्रों में भी अभिव्यक्त हुआ है । अथर्व-वेद के एक मंत्र में शरीर में आठ चक्र व नव द्वार, देवपुरी अयोध्या है । इसमें ज्योति से पूर्ण हिरण्य कोश ही स्वर्ग है । अर्थात् नवद्वारों के इस देह में जीवात्मा उस ज्योतिर्मय परमात्मा को दसवें द्वार में ही देख सकता है । वह ब्रह्म तो "ज्योतिषां ज्योतिरेकम्" सम्पूर्ण ज्योतियों में वही एक अनन्त ज्योतिरूप है ।

शब्द ब्रह्म

शब्द ब्रह्म ही उपनिषदों में "अक्षर ब्रह्म" कहा गया है ।[3] इस अक्षर ब्रह्म को ही नाथपन्थ में "शब्द" कहा गया है । गोरखनाथ शब्द को ही सर्वस्व मानकर सर्वत्र शब्द का विस्तार देखते हैं ।[4] उसी परम्परा में इन सन्त कवियों ने शब्द ब्रह्म की धारणा और उसकी अनुभूति होने पर "अनाहद नाद" का वर्णन किया है ।

- -

1. ज्योतिस्वरूप तत्त अनूप । अमल न मल न छाँह न धूप ।
   वही - परिशिष्ट - पद - 304
2. दसवां द्वार देहुरा, तामे जोति पिछांणि ।
   वही - भ्रम विधौंसण को अंग - साखी - 10
3. अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या ।
   तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ।। अथर्ववेद- 10/237
4. एतद्धयेवाक्षरं ब्रह्म एतद्धयेवाक्षरं परम्
   एतद्धयेवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्
   कठोपनिषद 1/2/16
5. सबदहि ताला सबद कुंजी सबद ही सबद जगाया ।
   सबदहि सबद सूं परचा हुआ सबद हि सबद समाया
   गोरखबानी - पृ. 8

उस शब्द ब्रह्म की अनुभूति होने पर नामदेव वेद, पुराण, पोथी ज्ञान को व्यर्थ समझते हैं। उस आनन्द की अवस्था में बिना मेघों के ही मोती रूपी अमृत रस की बूंदें बरसने लगती हैं। बिना बजाये शब्द ब्रह्म की ध्वनि सुनाई देती है पर बजानेवाला तो अगोचर होने से दृष्टिगोचर नहीं होता।[1] यही अगोचर उनका शब्द ब्रह्म है।

कबीर द्वारा शब्द ब्रह्म का विवेचन "सबद को अंग" में पठनीय है। इस शब्द ब्रह्म को वे सद्गुरु की कृपा से जान सके हैं।[2] उस शब्द की चोट लगने से ही तो कबीर अपने गंतव्य स्थान पर पहुंच सके हैं।[3]

"ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म" उपनिषदों में "ॐ" ही उस अक्षर या शब्द ब्रह्म का प्रतीक कहा गया है। यही ओंकार सृष्टि का मूल है। उसे देखने से मनुष्य को मुक्ति मिलेगी।[4]

- -

1. जाणी मै जाणी वेद पुराना। छोडो पानी पोथी।
   बिन मेघ मुक्ताहल बरषै। अ्रब निरन्तर मोती ।।
   बिनै बजाया बाजा बाजे। नादे अंबर गाजै
   बिन भैरै होत झनकारा। न दीसै बजावणहारा ।।
   डा॰ मिश्र व मौर्य - स॰ना॰हि॰प॰ = पद- 112
2. सद्गुरु साचा सूरिवा सबद जु बाह्या एक।
   लागत ही मै मिलि गया, पड़्या कलेजै छेक ।।
   क॰ ग्रं॰ - सबद को अंग - साखी - 4
3. सारा बहुत पुकारिया पीड पुकारै और।
   लागी चोट सबद की, रह्या कबीरा ठौर ।।
   वही, साखी - 8
4. ओं ऊकार आदि मैं जाना। लिखि और मैटै ताहि न माना
   ओं ऊकार लखै जो कोई। सोई लखि मेटणा न होई।
   वही, परिशिष्ट - पद - 152

इस शब्द ब्रह्म की साधना को नाद बिन्दु की साधना कहा गया है । "ॐ" में नाद और बिन्दु दोनों ही है । "अ" और "उ" दोनों मूलस्वर हैं । (॰) बिन्दु जो "म" के रूप में उच्चारित होता है वह प्रथम व्यंजन है । अत: सृष्टि की उत्पत्ति इस प्रथम ध्वनि "ॐ" द्वारा ही हुई । व्यंजन ध्वनि स्वर की सहायता से ही उच्चरित होती है । अत: प्रकृति भी ब्रह्म के बिना कुछ नहीं कर सकती अत: ब्रह्म की शक्ति का सहारा लेकर प्रकृति प्रकट होती है । अत: नाद ब्रह्म व बिन्दु प्रकृति को कहा गया है । ब्रह्म के नाम और रूप प्रकृति के सहारे व्यक्त होते हैं । "नामरूप दुई ईश उपाधि" इन दोनों के द्वारा उसका अनुभव किया जा सकता है ।

इस शब्द साधना के द्वारा उस ब्रह्म के साक्षात्कार का वर्णन करते हुए नामदेव उस साधना के लिए विरक्त हो राम का गान ही पर्याप्त समझते हैं ।[1]

कबीर उस शब्द साधना को करने का उपदेते हैं, क्योंकि उसी शब्द से सब कुछ प्रकट हुआ है, शब्द ही गुरु है । अनुरागी, वैरागी, षट्दर्शन सभी शब्द की महिमा को मानते हैं । यह संसार भी उसी शब्द का प्रसार है । अर्थात् ओंकार का जाप ही उस शब्द ब्रह्म की साधना है । यह सबसे न्यारा, विलक्षण भजनभेद है अत: सन्तों को शब्द साधना करने का

- -

1. वैरागी रामहि गाऊंगा ।
   सबद अतीत अनाहद राता । अकुला के घरि जाऊंगा ।।
   वेद पुरान सास्त्र गीता । गीत कवित न गाऊंगा ।।
   अखंड मंडल निराकार मैं । अनहद बेनि बजाऊंगा ।।
   डा॰ मिश्र व मौर्य सम्पादित - स॰ना॰हि॰प॰ = पद-99

उपदेश देते हैं ।[1] शब्द की साधना करते हुए उन्हें उसके आश्चर्य रूप की भी अनुभूति हुई ।

आश्चर्यमय रूप

"आश्चर्यवद् वदति कश्चिदेन"[2] गीता में वर्णित आश्चर्यमय रूप ब्रह्म की अनुभूति को इन सन्तों ने प्रकट किया है । इस आश्चर्य रूप को वही आत्मा देख सकता है जो ब्रह्म के साथ जागृतावस्था में रह चुका है, पर वह अद्भुत रूप अवर्णनीय है । इसी अभिव्यक्ति की असमर्थता के कारण सभी सन्तों को प्रतीकों व उलटवासियों का सहारा लेना पड़ा ।

जीव और शिव के संबन्ध को कूटात्मक शैली में व्यक्त करते हुए नामदेव कहते हैं, जैसे लघु चींटी के नेत्रों में महान् गजेन्द्र का समाना और खजूर के ऊँचे झाड पर पानी की मछली का चढ़ना जैसा आश्चर्यमय है वैसे ही इस छोटे से जीव में विश्वव्यापी ब्रह्म समाया है । यही उनका परमतत्व है ।[3] कबीर के वर्णन में नामदेव की प्रतिश्रुति ही मिलती है ।[4]

---

1. साधो शब्द साधना कीजे ।

   जेहि शब्द ते प्रकट भए सब, सोई शब्द सो गहि दीजे ।
   शब्दे सुन सुन भेष धरत है, शब्दे कहै अनुरागी ।
   षट दर्शन सब शब्द कहत है, शब्दे कहै वैरागी ।।
   शब्दे काया जग उतपानी, शब्दे कोटि पसारा ।
   कहै कबीर जहाँ शब्द होत है, भजनदेव है न्यारा ।।

   डा॰ हजारीप्रसाद द्विवेदी - कबीर - पृ॰ 271 पद 57

2. श्री भगवद्गीता - अ॰ 2 - श्लोक 29

3. अदबुद अकथा कथ्या न जाई । चींटी के नेत्र कैसे गजिन्द्र समाई ।
   कोई बोले नेरे कोई बोले दूरि । जल की मछली कैसे चढ़ि खजूरि ।।
   कोई बोले इन्द्री बाँध्या कोई बोले मुक्ता । सहज समाधि न चीन्हे मुग्धा ।
   कोई बोले वेद स्मृत पुराना । सतगुरु कथीया पद निर्वाना ।
   कहै नामदेव परमतत है ऐसा । जाके रूप न रेख वरण कहो कैसा ।
   सन्त नामदेव की हि॰ प॰ - पद- 76

3. कबीर ग्रन्थावली - पद - ।।

सगुण ब्रह्म

सन्त साहित्य में विवेच्य निर्गुण ब्रह्म में सगुण और अवतारवादी विशिष्टताओं का प्रभाव भी दृष्टिगत होता है । उनका वर्णन परम्परा समर्थित है ।

निर्गुण ब्रह्म मायोपाधिक दशा से सगुण कहलाता है । उसे ही वेदों में व्यक्त रूप कहा है । यही वेदान्तियों का "ईश्वर" या "सविशेष" या मायोपाधिक ईश्वर है । उस निरपेक्ष ब्रह्म का सगुण रूप सापेक्ष रूप है । जीव और जगत् की दृष्टि से इस सापेक्ष रूप की कल्पना की गई । जीव के सम्बन्ध से वह ईश्वर, माता, पिता, दीनदयालु, भक्तवत्सल आदि कहा गया है और जगत् के सम्बन्ध से स्रष्टा, पालक व संहारक माना गया है । उपनिषदों में उस ब्रह्म को सृष्टि, स्थिति व प्रलय का कारण माना है ।[1] इस रूप में उसका गुणगान करना ही सगुण ब्रह्म का वर्णन है ।

उसी परम्परा में नामदेव और कबीर ने सगुण ब्रह्म का विवेचन किया है ।

नामदेव उसे सर्वव्यापक कहते हुए सब जीवों की उत्पत्ति का कारण मानते हैं । उसके मायोपाधिक रूप से ही जीव भ्रम में पड़ा उसके वास्तविक रूप को भूल जाता है ।[2] उसके सृष्टिकर्ता रूप के प्रतिपादन के लिए नामदेव माली व दर्जी की उपमा देते हैं ।

---

1. यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते,
   यतो जातानि जीवन्ति
   यद् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति
   तद् विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म ।
   तैत्तिरीयोपनिषद् - 3/1
2. जामै सकल जीव की उत्पत्ति, सकल जीव मै आप जी
   माया मोह करि जगत् भुलाया, घटि घटि व्यापक आप जी ।।
   डा॰ मिश्र व मौर्य - सं॰ना॰हि॰प॰ = पद- 48

"माधो माली एक सयाना" वह सयाना माली सबके हृदय में छिपा हुआ है वही एक इस सृष्टि रूप वाटिका का स्रष्टा व संहारक है । और यह सृष्टि उसी का रूपान्तर मात्र है ।[1] अन्य एक पद में उसे दर्जी की उपमा देते हुए आश्चर्य प्रकट करते हैं कि जिस हरि ने मानव शरीर का अद्भुत चोला दस मास में तैयार किया है उसके मर्म को कोई नहीं समझ सका । वही इसको सीता है, पहनाता भी है । अर्थात् वही जन्मदाता भी है; पालक भी है, भक्ति मुक्ति का दाता वही पूर्ण परब्रह्म है ।[2]

कबीर भी उस ब्रह्म के कर्ता रूप का वर्णन करते हुए उसकी उपमा कुम्हार से देते हैं जो एक ही मिट्टी से नाना प्रकार के पात्र निर्मित करता है।[3] उसी तरह सूत्रधार ने समस्त विश्व के प्राणियों को रचा है ।[4]

- -

1\. माधो माली एक सयाना । अन्तरिगत रहै लुकाना ।
आपे बाडी आपे माली । कली कली कर जोडै ।।
पाके काचे काचे पाके । मनि माने ते तोडै ।
आपे चन्द आपे सूर पुनि आपे आपे धरनि अकासा ।
रचनहार विधि ऐसी रची है प्रणवै नामदेव दासा । - वही पद - 110

2\. हरि दरजी का मरम न पाया,
जिनि यहु चोगा कूब बनाया ।।
पाणी का चिन पवन का धागा ।
ताकूं सीवत मास दस लागा ।
भगति भुकति का पटा सिवाया ।
पूरण पारब्रह्म पद पाया ।
आप सीवै आप पहिरावै ।
निरत नामदेव नीव धरावै । - वही पद - 130

3\. माटी एक सकल संसारा, बहुविध भांडे घडै कुम्हारा
श्री श्यामसुन्दर दास - क॰ ग्र॰ - पद- 53

4\. एक ही खाक घडे सब भांडे, एक ही सिरजनहारा । - वही, पद-55

जगत दृष्टि से ब्रह्म के सापेक्ष गुणों की चर्चा करते हुए उसे स्रष्टा व पालक व संहारक कहते हैं ।[1] और सत्व, रज, तमो गुणों के आधार पर उन्हें ब्रह्मा, विष्णु और शंकर भी कहा है ।[2] क्योंकि ब्रह्मा ही स्रष्टा, विष्णु पालक, शंकर संहारक देव माने गये हैं । कहीं ब्रह्म को चित्रकार[3] राज व कारीगर की उपमा दी है । और इस त्रिगुणात्मिका प्रकृति का निर्माण कर उसीमें ब्रह्म अपने स्वरूप को छिपा रहा है । वह ब्रह्म तो आनन्द स्वरूप है।[4]

विराट् रूप

ईश्वर में दिव्य गुणों का आरोप कर उसके विराट् रूप की कल्पना की गई है । इस विराट् रूप की कल्पना का आधार ऋग्वेद का पुरुष सूक्त में वर्णित विराट् पुरुष है ।[5] इस रूप का वर्णन भी सगुण ब्रह्म की कोटि में आता है ।

इन आलोच्य कवियों को इस विराट् स्वरूप के दर्शन हुए थे । उसके विराट् रूप से अभिभूत हो नामदेव दुविधा में पड़े हुये है कि धूप, दीप, पुष्पसे कैसे उसकी आरती की जाए ? सातों समुद्रों का जिसके चरणों में निवास

- -

1. कहै कबीर सुनहु रे लोई, भानड़, घड़न संवारण सोई ।
   कबीर ग्रन्थावली पद - 273
2. रजगुन ब्रह्मा तमोगुन शंकर सतगुन हरि है सोई ।
   वही, पद-57
3. अंबरि दीसै केता तारा, कउन चतुर ऐसा चितरन हारा
   वही, पद-141
4. सत रज तम थैं कीन्हीं माया, आपरा मांके आप छिपाया
   ते तो आहि अनंद सरूपा, गुन पल्लव बिस्तार अनूपा
   वही - सतपदी रमैणी - पृ० 225
5. सहस्रशीर्षा: पुरुष: सहस्राक्ष: सहस्रपात्,
   स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ।
   ऋग्वेद 10/90/1-3

है, करोड़ों सूर्यों की शोभा जिसके नख की शोभा है, अठारह वनस्पतियाँ जिसकी माला है, अनन्त करोड़ों वाद्यों का वादन जिसके स्वागतार्थ हो रहा है, उस चौरासी लक्ष प्राणियों में व्याप्त हरि का गुण-गान ही उन्हें प्रिय है। उस अनन्त विराट् की आरती अनन्तकाल से हो रही है। अतः वे उसके गुण-गान में ही जीवन का साफल्य मानते हैं।[1] नामदेव ने उसके विराट् रूप को "कलन्दर अब्दाली"[2] तथा "लम्बक नाथ"[3] कहकर भी अभिव्यक्त किया है।

कबीर विराट् ब्रह्म के ऐश्वर्यशाली रूप का वर्णन इस प्रकार करते हैं – उनका ब्रह्म करोड़ों सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित, करोड़ों महादेव की महिमा से मंडित, करोड़ों दुर्गा की शक्ति से सम्पन्न, करोड़ों ब्रह्मा के ज्ञान से विभूषित, करोड़ों चन्द्रमा की दीप्ति से देदीप्यमान है। तैंतीस कोटि देवताओं का वही पाक है। करोड़ों धर्मराज उसके प्रतिहारी, करोड़ों कुबेर भण्डारी, करोड़ों लक्ष्मियाँ उसका श्रृंगार, करोड़ों पाप पुण्य का व्यवहार उसके दरबार में होता है। कोटि इन्द्र उसके सेवक हैं, करोड़ों गंधर्व उसकी जय बोलते हैं। वह इतना

- -

1. कहा लै आरती दास करै। तीनि लोक जाकी जोति फिरै
   सात समुंद जाके चरन निवासा। कहा भयो जल कुंभ भरै।।
   कोटि भान जाके नख की सोभा। कहा भयो कर दीप धरै।
   अठार भार जाके वनमाला। कहा भयो कर पहोप धरै।
   अनन्त कोटि जाके बाजा बाजै, कहा घंटा झणकार करै।
   चौरासी लख व्यापक रामा। केवल हरि जस गावै नामा।
   डा॰ मिश्र व मौर्य – स॰ना॰हि॰प॰ = पद – 144
2. डा॰ मिश्र व मौर्य – स॰ना॰हि॰प॰ = पद – 94
3. भले विराजे लंबकनाथ, धरणीधर स्वर्गलोक माथ।
   वही, पद – 187

महान् है कि करोड़ों ज्ञान भी उसका भेद बताने में असमर्थ है ।[1]

भक्तवत्सल रूप

इन दोनों ही कवियों ने पौराणिक कथाओं का आश्रय लेकर ब्रह्म को भक्त-वत्सल गुण युक्त कहा है । इसी कारण भगवान् भक्तों के वश में हैं । उसी ने अंबरीष को अभयपद व विभीषण को राज्य दिया. । सुदामा को नव-निधि का स्वामी बना दिया और ध्रुव को अटल पद दिया । भक्तों के उद्धारक भगवान् ने नृसिंह रूप धारण कर हिरण्यकश्यप का वध कर भक्त प्रहलाद को उबारा । नामदेव का विश्वास है कि वे केशव आज भी भक्तों के वशीभूत होकर बलि के द्वार के प्रतिहारी रूप में स्थित है ।[2] नामदेव का अलख निरंजन राम दीनदयालु [3] है, गुणों का सागर है [4] वही माता, पिता व गुरु है [5] वह पतितपावन है ।[6] शरणागत वत्सल है अत: नामदेव उसकी बलिहारी जाते हैं ।

---

1. जाके सूरिज कोटि करे परकास, कोटि महादेव गिरिकविलास ।
   ब्रह्मा कोटि वेद उचरे, दुर्गा कोटि जाके मरदन करे ।
   कोटि चन्द्रमा गहे चिराक, सुर तेतीसु जीमे पाक ।
   नौ ग्रह कोटि ठाढे दरबार, धरमराय पौली प्रतिहार ।
   कोटि कुबेर जाके भरे भण्डार, लक्ष्मी कोटि करे सिंगार ।
   कोटिक पाप पुनि ब्योहारे, इन्द्रकोटि जाकी सेवा करे ।
   जगि कोटि जाके दरबार, गन्ध्रप कोटि करे जैकार ।
   विद्याकोटि सबै गुण कहै, पारब्रह्म को पार न लहै ।
   श्री श्या॰ दास - क॰ ग्रं॰ = पद-340

2. अंबरीक कउ दीउ अभैपद राजु भभीखन अधिक करउ ।
   नउनिधि ठाकुरी दई सुदामै ध्रुव अटलु अजहू न टरिउ ।।
   भगत हेति मारिउ हरनाखसु नरसिंह रूप होइ देहधरिउ
   नामा कहै भगति बसि केसव अजहू बलि के दुआर खरो ।
   डा॰ मिश्र व मौर्य - स॰ना॰हि॰प॰ = पद- 211

3. अलख निरंजन दीनदयाला - वही - 128
4. गुणसागर गोबिन्द गाई । - वही - पद - 124
5. राम जननी राम पिता राम बन्धु भौ तरिता । वही-88
6. पतितपावन माधउ बिरदु तेरा । वही, पद- 199

नामदेव की भान्ति कबीर के भक्तवत्सल राम परमदयालु, भवभयहारी, पतितपावन है ।[1] उसकी पतितपावनता के लिए उन्होंने भी अजामिल, गज, गणिका का उल्लेख किया है ।[2] वे भक्तवत्सल भक्तों को संकट में देखकर उनकी रक्षार्थ दौड़कर आते हैं । नृसिंह रूप धारण कर एक बार ही नहीं अपितु अनेकों बार प्रह्लाद के समान भक्तों का उद्धार किया है ।[3]

इस प्रकार हमारे दोनों आलोच्य कवियों तथा परवर्ती सभी सन्त कवियों ने भक्ति की महत्ता को प्रतिपादित करने के लिए व जन-मानस को भक्ति की ओर आकर्षित करने के लिए पौराणिक कथाओं का आश्रय लिया ।[4] उनके इन पौराणिक कथाओं के संदर्भ से उनके निर्गुण ब्रह्म में अवतारवादी तत्वों का समावेश हो गया है जिससे अवतार रूप का समर्थन होता है ।

<u>अवतार रूप</u>

इन सन्तों की वाणियों का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि उन सब पौराणिक कथाओं का सम्बन्ध विष्णु और उसके अवतारों से है । ब्रह्मा और शिव सम्बन्धी पौराणिक कथाओं का सन्त साहित्य में नितान्त अभाव है।

नामदेव और कबीर ने पौराणिक अवतारों के समान ही अपने निर्गुण ब्रह्म पर विष्णु के अवतारों से सम्बद्ध कथाओं का आरोप अधिक किया है।

---

1. तुम्ह कृपाल दयाल दामोदर भक्तवछल भौहारी ।
   कबीर ग्रन्थावली - पद- 191
2. अजामेल गज गनिका, पतित करम कीन्हा ।
   तेऊ उतरि पारि गये, राम नाम लीन्हा ।
   वही, पद-320
3. खम्भा में प्रगट ह्वै गिलारि, हरनाकस मार्यो नख बिदारि ।।
   महापुरुष देवाधिदेव नरस्यंध प्रकट कियौ भगति भेव ।।
   कहै कबीर कोई लहै न पार, प्रहिलाद उबार्यो अनेक बार ।।
   वही, पद-379
4. डा॰ मुंशीराम शर्मा - भक्ति का विकास - पृ॰ 432

खम्भा माँहि प्रगट्यो हरी ।
नामदेव को स्वामी नरहरी ।।[1]

कहकर नामदेव नृसिंह अवतार को मान्यता देते हैं । मातृ-पितृ भक्त पुंडलीक की भक्ति के कारण वैकुण्ठ से विष्णु विट्ठल अवतार ले पंढरपुर में आकर स्थित हो गये ।[2] इस तरह विट्ठल अवतार का समर्थन किया तो दशरथपुत्र रामचन्द्र ही उनका राम है ।[3] अन्य एक पद में राम के प्रताप से अहिल्या का उद्धार, गणिका कुब्जा, व्याध अजामिल, दासीसुत विदुर, सुदामा के उद्धार का उल्लेख करते हैं ।[4] विष्णु के अवतार राम और कृष्ण के शरणागत रक्षक रूप का वर्णन करते हुए गज के उद्धार, दुःशासन की सभा में द्रौपदी की लाज की रक्षा, गौतम नारी अहिल्या के उद्धार की चर्चा करते हैं ।[5] तो उस ईश्वर के "भर्त परिहारी" रूप का समर्थन भी उनका

- -

1. डा॰ मिश्र व मौर्य - सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - पद- 127
2. मायबाप के सेवा करीये पुंडलीक भक्त सवाई ।
   वैकुण्ठ से विष्णु लाये खड़े करकर बतलाई । - वही, पद- 189
3. जसरथ राये नन्द राजा मेरा रामचन्द्र । - वही, पद- 159
4. देवा पाहन तारीअले
   राम कहत जन कस न तरै ।।
   तारिले गनिका बिनुरूप कुब्जा, बिआध अजामिलु तारिअले
   दासीसुत जनु बिदरु सुदामा, उग्रसेन कउ राज दिये ।
   - वही पद - 149
5. मेरो बाप माधउ तु धनु केसो सांवलीऊ विठुलाई ।
   कर धरे चक्र वैकुण्ठ ते आए गज हसती के प्रान उधारीअले ।
   दुहसासन की सभा द्रोपती अंबर लेत उबारिअले ।
   गौतम नारी अहिल्या तारी पावन केतिक तारीअले ।
   ऐसा अधमु अजाति नामदेउ तउ सरनागति आईअले ।।
   डा॰ मिश्र व मौर्य - स॰ना॰हि॰ प॰ = पद- 160

और दुर्वासा ऋषि की पौराणिक कथाओं के आधार पर किया है ।[1]

कबीर की भी अनेक उक्तियों से अवतार रूप का समर्थन होता है । कबीर एक पद में विष्णु के रूप का इस प्रकार उल्लेख करते हैं । जिसकी नाभि से ब्रह्मा उत्पन्न हुए और चरणों से गंगा निकली हैं । वे उसी जगद्गुरु गोविन्द की भक्ति चाहते हैं ।[2] ब्रह्मा पुराणों के अनुसार सृष्टिकर्ता माना गया है इन पंक्तियों द्वारा कबीर उसीका समर्थन करते हुए ज्ञात होते हैं ।[3]

एक पद में कबीर वृन्दावनवासी, मनहरण, गोपाल श्री कृष्ण को अपने ठाकुर मानते हैं ।[4] तो एक अन्य पद में उस शाङ्‌र्ग-पाणि से अभयपद का दान मांगते हैं जिसने सहस्रबाहु राक्षस का वध किया, दुर्योधन का मान खंडित किया।[5] राजा अम्बरीष भक्त की रक्षा करनेवाला शरणागत वत्सल ही कबीर का ठाकुर है ।[6]

- -

1. सर्व सोवन्नि लंका होती रावन से अहंकारी ।
छाडि गये दर बांधे हाथी छिन में भये भिखारी
दुरवासा सूं करे ठगोरी जादे सबै खपाये ।
गरब प्रहारी है प्रभु मेरो नामदेव हरिजस गाये ।।
वही, पद- 140
स. ना. दे. प.

2. जाके नाभि पदम सु उदित ब्रह्मा चरनगंग तरंग रे ।
कहै कबीर हरि भगति वांछू जगद्गुर गोब्यंद रे ।
कबीर ग्रन्थावली - पद - 390

3. ब्रह्मा एक जिनि सृष्टि उपाइ, नांव कुलाल धराया । वही, पद-268

4. वृंदावन मनहरन मनोहर कृष्ण चरावत गाउ रे ।
जाका ठाकुर तु ही सारिंगधर मोहि कबीरा नाउं रे ।
कबीर ग्रन्थावली - परिशिष्ट - पद-18

5. सहसबाहु के हरे परांण, दुरजोधन घाल्यो खड़ दे मान ।
दास कबीर भजि सारंगपान देहु अभेपद मांगो दान । - वही, पद-340

6. राजा अंबरीष के कारणि चक्र सुदर्शन जारे
दास कबीर को ठाकुर ऐसो, भगत की सरन उबारे ।
वही, पद-122

इस तरह इनका निर्गुण ब्रह्म भक्ति की दृष्टि से सगुण है, भक्तवत्सल, शरणागत रक्षक, गर्व परिहारी है । उसी दृष्टि से उन्होंने अवतार रूप का उल्लेखमात्र किया है । इसके अतिरिक्त इन नामोपासक सन्तों ने नाम की महिमा को प्रतिपादित करने के लिए अवतारों से सम्बद्ध हरिनामावली व भक्त-कथाओं का भी वर्णन किया है । अवतार रूप का उल्लेखमात्र करते हुए उन्होंने कहीं-कहीं लीलाओं का संकेतमात्र दिया पर सगुणोपासकों की भान्ति लीला वर्णन नहीं किया । अतः उनका अवतार रूप भक्ति परक है ।

इससे यह स्पष्ट है कि ये सन्त निर्गुण ईश्वर के उपासक होते हुए भी वे सगुण और अवतार रूप के कट्टर विरोधी नहीं थे । अन्यथा वे पुराणों में प्रचलित अवतारी विष्णु के उद्धार कार्यों का समावेश अपने पदों में नहीं करते ।[1]

इस दृष्टि से जहाँ एक ओर उनके इस प्रकार के उल्लेखों से अवतार रूप का समर्थन होता है तो दूसरी ओर उन्होंने अवतार रूप की कड़ी आलोचना भी की है ।

अवतार रूप की आलोचना

इन सन्तों के ब्रह्म का अवतार रूप भक्ति परक है, लीला परक नहीं । सन्तोंने सगुणोपासकों की भान्ति लीला वर्णन नहीं किया । अतः भक्ति के आधार पर ही तत्कालीन युग में प्रचलित मायिक अवतारों का विरोध किया है । माया जनित मायिक अवतारों को नित्य समझने की आलोचना की है ।

नामदेव एक पद में अज्ञानवश उस ब्रह्म को अवतारों में सीमित समझने की भूल को स्वीकार करते हुए कहते हैं कि वह अलख, अगोचर ब्रह्म तो एक है पर दृगहीन अर्थात् दिव्यदृष्टिहीन व्यक्ति ही उसके दशावतारों

---

1. डा० कपिलदेव पाण्डेय - मध्यकालीन भक्ति साहित्य में अवतारवाद - पृ० 194

का बखान करते हैं वे सीमित दृष्टि से ही उस एक सत्य को मूर्ति में सीमित कर, उसे ही सब कुछ समझना भूल है । वह ब्रह्म तो अन्तर्यामी है । अतः नामदेव उस अन्तर्यामी की अनुभूति से ही उस मायारहित निरंजन का ध्यान करते हैं ।[1]

ये सब अवतार कालवश थे, अतः दशावतारों की अनित्यता बतलाते हुए कबीर भी नामदेव की तरह उस अनादि व अविनाशी तत्व को निरंजन कहते हैं और उन अज्ञानियों से पूछते हैं कि जिस समय यह पृथ्वी और आकाश नहीं था उस समय नन्द के नंदन कहाँ थे ? यह अवतार रूप नन्द तो चौरासी लक्ष योनियों में भ्रमण करते हुए थक गया है।[2] इस तरह सभी सन्तों ने अवतारों के नित्य रूप की आलोचना की है क्योंकि सभी अवतार कालाधीन थे ।[3] काल की सीमा में बन्धे हुए नहीं, वे अनादि,अनन्त है ।

- -

1. चूक भजीला चूक भजीला ।
   चूके चित्त अवतार धरीला ।।
   दृगहीणां दस औतार वखाणे ।
   अकल, अगोचर एक न जाणे ।।
   भूला जग पाषाण पूजीला ।
   अन्तरजामी उरि न सूझीला ।।
   जन नामदेव निरखि निरंजन ध्यावे ।
   अंजन आवे जाइ न भावे ।। – स॰मा॰हि॰प॰ = पद– 134

2. धरनि अकास दोऊ नहीं होते, तब यहु नन्दन कहाँ थौरे
   जामे मरे न सकुटि आवे नांव निरंजन जाको रे ।
   अविनासी उपजे नहि बिनसै, सन्त सुजस कहे ताको रे ।
   लष चौरासी जीव जन्त में भ्रमत नन्द थाको रे । – वही, पद– 48

3. दस चौदह अवतार कालि के बस में पाई ।
   पलटूसाहब की बानी – भाग– 1 = पृ॰ 46

वे ईश्वर के ब्रह्मा, विष्णु आदि अवतारों को गुणात्मक मानते हैं इसीलिए नामदेव कहते हैं कि उस विठ्ठल की सकल माया के कारण माया के भीतर ब्रह्म नहीं दिखाई देता । ब्रह्म तो मायारहित है । अतः उनके इष्टदेव विठ्ठल भी निर्गुण ब्रह्म के प्रतीक हैं । विठ्ठल को मायिक अवतार से भिन्न बताया है ।[1]

सन्त कबीर के उपास्य देव राम भी पौराणिक राम नहीं, त्रिलोक प्रसिद्ध राम नहीं, दशरथसुत राम नहीं, उनके राम नाम का रहस्य किसी ने नहीं जाना उस रहस्य को कबीर जान सके हैं ।[2] अतः वे तो ऐसे राम के सायुज्य के अभिलाषी हैं जिसने दशरथ के घर अवतार नहीं लिया और न ही लंकाधिपति रावण का वध किया । उस ब्रह्म के कृष्णावतार का खंडन करते हुए कहते हैं कि वे न तो देवकी की कोख से पैदा हुए थे और न यशोदा ने उन्हें गोद खिलाया था, न तो वे ग्वालों के संग घूमते थे और न ही गोवर्धनधारी थे । न वराहावतार लेकर वेद और धरती का उद्धार किया । वामनावतार लेकर बलि का छल नहीं किया और न वह गंडक का शालिग्राम है, न इसने मत्स्य, कूर्म होकर जल में भ्रमण किया, न बद्रीनाथ में तप और न परशुराम के रूप में क्षत्रियों को दंडित किया । उन्होंने विष्णु के दस अवतारों के रूप में इस पृथ्वी पर जन्म नहीं लिया । कबीर के मत में ये सब

---

1. बीठो बीठो तेरी सकल माया
   आगे इनि अनेक भरमाया ।।
   माया अन्तर ब्रह्म न दीसै ।
   ब्रह्म के अन्तर माया नहीं दीसै ।।
   स॰ नाम॰ वि॰ प॰ = पद- 39
2. दशरथसुत तिहु लोक बखाना ।
   रामनाम का मरम है आना ।
   कबीर ग्रन्थावली - पृष्ठ- 36

ऊपरी व्यवहार है, आरोपित रूप हैं वह ब्रह्म राम सर्वव्यापी है, अगम, अपार है ।[1] वही निराकार राम ही घट घट में रमनेवाला "रमिता राम" है ।[2]

इस तरह सन्त नामदेव और सन्त कबीर दोनों अवतार रूप की नित्य रूप में देखने की स्पष्ट और कड़ी आलोचना की । वस्तुतः सन्तों ने परम्परावादी व कट्टरपन्थी पण्डितों व व्यासों द्वारा उपदिष्ट, हिन्दू-मुसलमानों में विद्वेष उत्पन्न करनेवाला, रूढ़िग्रस्त व अन्धपरम्परा से आवृत्त व मूर्तिपूजा पर आश्रित अवतारवाद का विरोध किया है ।[3]

आलोचना का रहस्य

अवतार रूप के कहीं समर्थन व कहीं आलोचना सम्बन्धी परस्पर विरोधी विचारों का अध्ययन करने पर यह तथ्य उपलब्ध होता है कि इस आलोचना का हेतु सन्तों का विशेष दृष्टिकोण था, विशिष्ट उद्देश्य था ।

---

1. देवै कूख न औतरि आवा, ना जसवै गोद खेलावा ।
ना वो ग्वालन के संग फिरिया, गोवरधन ले ना कर धरिया ।
बामन होय न बलि छलिया । धरणी वेद ले न उधारिया ।
गंडक सालिगराम न कोला । मच्छ कच्छ ह्वै जलहि न डोला ।
बद्री बैठा ध्यान नहिं लावा । परसराम ह्वै खत्री न सतावा
द्वारामती सरीर न छाड़ा । जगन्नाथ ले प्यंड न गाड़ा ।
कहै कबीर विचार करि, ये ऊले व्यवहार ।
याही थैं जे अगम है, सो बरति रह्या संसार ।
क॰ ग्रं॰ – पृ॰ बारहपदी रमैणी – पृ॰ 243
2. जो या देहरहित है, सो है रमिता राम ।
वही, बारहपदी रमैणी – पृ॰ 243
3. डा॰ कपिलदेव पाण्डेय – मध्यकालीन भक्ति साहित्य में अवतारवाद – पृ॰ 192

ऊपरी तौर पर यह खंडन सा प्रतीत होता है पर वास्तव में यह खंडन नहीं । गीता में भी कहा है कि जो मुझे जिस दृष्टि से देखेगा मैं उसे वैसा ही फल दूंगा ।[1]

इन सन्तों द्वारा अवतार रूप की आलोचना का प्रधान कारण तत्कालीन परिस्थितियों में सगुण भक्ति के प्राबल्य के प्रभाव स्वरूप अवतार रूप को सीमित दृष्टि से देखा जाना था । यद्यपि अवतारवाद की भावना अति प्राचीन है पर उस युग में अवतारवाद का विकास अर्चावतारों, ईश्वर के जड़ प्रतीकों तथा ऐतिहासिक अवतारों को लेकर हुआ, जिसमें साम्प्रदायिक मान्यताओं की ही प्रधानता थी । सामान्य जन अवतार के मूल उद्देश्य को भूल गये थे । अर्चावतार के नाम पर विधिनिषेध पूजा पद्धतियों और बाह्याचारों को ही सब कुछ समझा जाने लगा था जिसके फलस्वरूप साम्प्रदायिक विद्वेष की वृद्धि हो रही थी अतः मानव एकता के पुजारी सन्तों ने अर्चावतार व आचारवाद दोनों की आलोचना की ।[2] डा॰ रामनिरंजन पाण्डेय के शब्दों में उनकी आलोचना का रहस्य यह है :- "अनन्त की उपासना जब केवल मूर्ति की एक क्षुद्र सीमा के भीतर ही होने लगती है तब भक्त इस बात को सहन नहीं कर सकता । यदि अनन्त की अनन्तता के रहस्य को समझकर मूर्तिपूजा की जाए तो मूर्ति केवल प्रतीक मात्र रह जाती है । उसके माध्यम से उपासना परम विराट् की ही होती है । ऐसी ही स्थिति सन्तों को अभीष्ट होती है । और जब कभी इस दृष्टिकोण का लोप होने लगता है, तब वे इन सोए हुए उपासकों को कशाघात से जगा देते हैं । यही है उनकी कड़ी आलोचना का रहस्य ।[3] उनकी आलोचना तत्कालीन अन्ध मूर्तिपूजकों के प्रति कशाघात थी । अतः डा॰ द्विवेदी जी के शब्दों में यह मान्य करना पड़ेगा कि "उन्होंने सगुण ब्रह्म का विरोध या खंडन नहीं किया अपितु

---

1. भगवद्गीता - अध्याय 7/21 व 4/11
2. डा॰ कपिलदेव पाण्डेय - मध्यकालीन भक्ति साहित्य में अवतारवाद -पृ॰ 200
3. डा॰ रामनिरंजन पाण्डेय - रामभक्ति शाखा - पृ॰ 45

अपितु मुक्ति के साधन, सात्विक पूजा, अवतारोपासना, योग, जप, तप, संयम तीर्थ, व्रत, दान आदि की दुरुपयोगिता का खंडन किया है ।[1]

इस दृष्टि से उनकी रचनाओं का समग्रता से अध्ययन के पश्चात हम कह सकते हैं कि जहाँ वे खंडन करते हैं वहाँ अल्पज्ञ के ज्ञान का खण्डन करते हैं ।

नामदेव "दुनदीचा दस औतार बखाणे" व भूला जग पाषाण पूजीला[2] द्वारा उन अज्ञानियों के अल्पज्ञान का खंडन करते है और कबीर भी स्पष्ट कहते हैं कि यदि कोई उसे नन्द का नन्दन समझकर ही उस अवतार रूप की उपासना करता है तो यह उसकी भूल है, वह तो अनादि, अविनाशी तत्व है ।[3] कबीर अन्य एक पद में कहते हैं कि -

हस्ति देख भुलाना प्रभु न पहिचाना ।[4]

अर्थात् सीमित दृष्टि के कारण ही दुर्योधन ने प्रभु कृष्ण को नहीं पहचाना तभी वे कृष्ण को अपने सम्बन्धी रूप में देखते हैं । सीमा के अस्तित्व में वास्तविक प्रभु को वे भूल गये । ऐसी अवस्था उन अन्धमूर्ति पूजकों की थी । अतः इन सन्तों ने उस अवतार रूप में निहित असीम को देखने की दिव्य दृष्टि दी ।

इसके अतिरिक्त सन्त "एक साधे सब साधे" के अनुसार सीम में उस एक मूल तत्व को ही प्रतिपादित करना चाहते थे अतः उन्होंने बहुदेवोपासना का विरोध किया । कबीर का मूल उद्देश्य उस एक अद्वितीय सत्ता को सिद्ध करना था तभी तो वे कहते हैं :-

- -

1• डा• हजारीप्रसाद द्विवेदी - कबीर - पृ• 130
2• सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - पद - 134
3• कबीर ग्रन्थावली, पद- 48
4• कबीर ग्रन्थावली, परिशिष्ट, पद- 176

कबीर एक न जाणियां तौ बहु जाण्यां क्या होई ।
एक तै सब होत है, सब तै एक न होई ।। [1]

इस तरह इन सन्तों ने ससीम में असीम को देखने की दिव्य दृष्टि प्रदान की, बहुत्व में एकत्व की अनुभूति करवाई ।

बहुत्व में एकत्व की अनुभूति के कारण ही इन सन्तों ने भगवान् के अनन्तनामों में एक अभेद का ही दर्शन किया है ।[2]

सन्तों की साधना का मूलमंत्र ही नामोपासना रही है, अतः ब्रह्म को अनन्त नामों से अभिहित करते हुए भी परम्परागत राम नाम को अधिक प्रधानता दी । उनके काव्य का केन्द्र बिन्दु निर्गुण राम है ।

निर्गुण राम की परम्परा

साहित्यिक परम्परा की दृष्टि से सन्त साहित्य नाथ परम्परा की ही एक शृंखला है । गोरखनाथ ने परब्रह्म के दर्शन राम रूप में ही किये हैं । उनसे पूर्व राम तापनीय उपनिषदों में परब्रह्म परमात्मा ही राम शब्द द्वारा अभिहित किया गया है ।[3]

गोरखनाथ का परब्रह्म निर्गुण राम ही है । उनके मत में राम में रमना ही ज्ञान है ।[4] नाथ पन्थ का राम अवतारी राम नहीं, वह अविनाशी अनादि, अनन्त है ।[5] उसे ही नाथपन्थियों ने राजाराम व आत्माराम कहा है[6]

---

1. कबीर ग्रन्थावली - निहकर्मी पतिव्रता कौ अंग - सा॰ 9
2. कबीर यहु तौ एक है पड़दा दीया भेष - वही - भेष कौ अंग - सा. 18
3. डा॰ कपिलदेव पाण्डेय - मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद-पृ॰ 182
4. अहोनिसि मनाध्यान । निरन्तर रमैवा राम ।
   ग्यान कथै गोरखनाथ, पाइया परम निधान ।
   पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल गोरखबानी - पृ॰ 127
5. तू अविनासी आदू अलीप, मोहिभरोसा पडीया
   सब संसार छडीया है तेरा, तू कितहूं न छडीया ।। - वही- पृ॰ 154
6. मन रे राजाराम होयले मुकंद । वही - पृ॰ 155

नाथ परम्परा के महाराष्ट्रीय सन्त निवृत्तिनाथ व ज्ञानदेव ने भी आत्माराम और आत्मराज द्वारा परब्रह्म का उल्लेख किया है । नाथपन्थी सन्तों कवियों द्वारा यह परम्परा, मराठी भक्ति साहित्य में गृहीत हुई । सन्त नामदेव के मराठी अभंगों में भी सगुण राम की अपेक्षा निर्गुण परब्रह्म का निर्देश करने के लिए "राम" अभिधान का प्रयोग किया है ।[1] और हिन्दी में इस परम्परा का प्रवर्तन भी सन्त नामदेव द्वारा हिन्दी पदों में राम का प्रतिपादन कर किया गया और उनके द्वारा प्रवर्तित इस राम को सन्त कबीर ने निर्गुण से विभूषित कर अपनाया ।

अतः निष्कर्ष यह है कि वास्तव में सन्तों के उपास्य राम नाथपन्थीय परम्परा का परिपाक है ।[2] उसे रामानन्दी प्रभाव कहना [3] परम्परा से विच्छिन्न करना है ।

निर्गुण राम

नामदेव के हिन्दी पदों के आधार पर यह स्पष्ट और निश्चित है कि उनके काव्य का केन्द्र बिन्दु परमतत्व निर्गुण राम ही है । सन्त नामदेव के "निर्गुण राम" की भूमिका इस पद में कितनी स्पष्ट है ।

---

1. [अ] नामा म्हणे राम ओंकाराचे मूळ, परब्रह्म केवळ राम नाम ।।
नामदेव गाथा - अभंग - 660

[आ] नामा म्हणे मूळ राम परब्रह्म, जगाचा विश्राम त्यासी भजे ।
वही, अभंग - 760

[इ] सार ते सोमत उपनिषद तुम्हा, वाचे राम नाम जप करा ।
वही, 662

[ई] नामा म्हणे राम त्रिभुवन व्यापी ।। - वही, 644

2. डा॰ श्री र॰कुलकर्णी - 'सन्त नामदेवांच्या हिन्दी कवितातील राम' - लेख मराठी - मराठी स्वाध्याय संशोधन पत्रिका, अंक 8 वाँ, सन् 1973

3. डा॰ भागीरथ मिश्र - हिन्दी सन्त मत के आद्य प्रवर्तक - लेख - नामदेव दर्शन - पृ॰ 563

"राम बोले राम बोले राम बिना को बोले रे भाई
एकल मीटी कुंजर चींटी भाजन रे बहु नाना
थावर जंगम कीट पतंगा, सब घटि राम समाना
एकल चिंता राखिले निंता छूटे सब आसा ।
प्रणवत नामा भयेनिहकामा तुम ठाकुर मैं दासा ।"[1]

इसी भाव की अभिव्यक्ति मराठी अभंगों में भी हुई है :-

एकचि असले एकचि देखिले,
　　　　ब्रह्म हे संचले हरिनामे ।
एक एकाकार सर्व ही आकार,
　　　　राम हा साकार सर्व घटी ।।[2]

घट-घट व्यापक अन्तर्यामी राम को ही नामदेव ने आत्माराम कहा है, वही स्वयंभू देव है । स्वयंभू देव की पूजा ही तो वास्तविक पूजा है।[3]

उनका राम सर्वव्यापी है ।[4] जड़ चेतन सभी में उस सत्य राम की सत्ता है ।[5] वही एक अनादि व शाश्वत तत्व है ।[6] वही एक अद्वैत तत्व है।[7] जिसके अधीन सभी देव है । शंकर, ब्रह्मा, इन्द्रदेव तथा अपनी सहस्त्रकलाओं के साथ सूर्य व चन्द्र उसके संकेतों पर नाचते है । काल, त्रिकाल व अकाल भी

- -

1. डा. मिश्र व मौर्य सम्पादित - स.ना.हि.प. = पद-6
2. नामदेव गाथा - मराठी अभंग - 765
3. स्वयंभूदेव की सेवा जाने तो दिव दृष्टि है सकल पिछाने ।
   नामदेव भणे मेरे यही पूजा, आतमराम अवर नहि दूजा ।
   स. ना. हि. प. = पद- 20
4. दहदिसि राम रह्या भरपूरि - स.ना.हि.प. = पद- 2
5. थावर जंगम कीट पतंगा, सतिराम सबहिन के संगा । वही, पद- 30
6. एक राम नाम तत रचैला । वही, पद - 98
7. जल भीतरि कुंभ समानिआ ।
   सभु रामु एकु करि जानिआ । वही - पद- 154

उसकी सत्ता को मानते हैं । भक्त श्रेष्ठ नारद उसकी सेवा में हाथ जोड़े खड़े रहते हैं । तैंतीस कोटि देवता भी उसी अन्तर्यामी राम के अधीन है।[2]

अतः नामदेव मनुष्यमात्र को उसे भजने का उपदेश देते हैं ।

रामनाम जपि लोई, परमतत्त है सोई ।[3]

कबीर के राम

उसी राम को कबीर राम नाम को तत्सार[4] कहते हुए निर्गुण राम के जपने का उपदेश देते हैं ।[5] कबीर के इस निर्गुण राम का परिचय डा॰ हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस प्रकार दिया है ।

"इसी त्रिगुणातीत, द्वैताद्वैत विलक्षण, भावाभावविनिर्मुक्त, अलख, अगोचर, अगम्य, प्रेम पारावार ब्रह्म को कबीर ने निर्गुण राम कहकर सम्बोधित किया है । वह राम समस्त ज्ञान तत्वों से भिन्न है, फिर भी सर्वमय है । वह अनुभवैकगम्य है अतः उसे कबीर ने उसे "गूंगे का गुड़" कह समझाया है ।[6] कबीर के इस ब्रह्म का विवेचन हमने गत पृष्ठों में किया है ।

---

1. नाचि रे मन राम के आगे ।
   ध्यान विचारि जोग वैरागे ।।
   नाचे ब्रह्मा नाचे इन्द ।
   सहसकला नाचे रविचन्द ।।
   राम के आगे संकर नाचे
   काल विकाल अकाल हि नाचे ।
   नारद नाचे दोई कर जोडि ।
   सुर नाचे तैंतीसु कोडि ।। – वही, पद–137
2. ऐसो रामराइ अन्तरजामी - श्री. श. तु. जोशी - प. ना. पद 58
3. वही, पद– 89
4. कबीर ग्रन्थावली पद सुमिरण कौ अंग - सा. 2
5. कबीर ग्रन्थावली, पद–49
6. डा॰ हजारीप्रसाद द्विवेदी – कबीर – पृ॰ 136

नामदेव के इष्टदेव "विठ्ठल"

परमतत्व के अनेक अभिधानों में वारकरी सम्प्रदाय में गृहीत विठ्ठल विष्णु के अवतार कृष्ण के बाल रूप माने गये है । पुंडलिक भक्त के हितार्थ पंढरपूर में ईंट पर खड़ी हुई विठ्ठल मूर्ति उसी का अवतार मानी गई है । इस विठ्ठल की प्रतिमा के हाथों में विष्णुचक्र व पद्मचक्र है और मस्तक पर शिवलिंग है । यही विठ्ठल सन्त नामदेव के इष्टदेव थे । नामदेव के मराठी अभंगों में "विठ्ठल माहात्म्य", "पंढरी-माहात्म्य" इन प्रकरणों में विठ्ठल की महिमा का गुण गौरव गान अधिक किया । नामदेव ने विठ्ठल शब्द पंढरपूर की विठ्ठल प्रतिमा और व्यापक ब्रह्म दोनों ही अर्थों में किया है ।

वारकरी सम्प्रदाय अद्वैतमतवादी भक्ति प्रधान है । इसमें विठ्ठल को व्यापक, निर्गुण निराकार मानते हुए सगुण और साकार भी माना है । नामदेव प्रारम्भ में आर्त सगुणोपासक थे । अतः उनकी भक्तिकल्पना विशिष्ट दैवताधिष्ठित थी । वे सगुण का प्रतिपादन निर्गुण की भूमिका पर करते है, निर्गुण को प्रधानता देते हैं । उनका विठ्ठल निर्विकल्प, निराकार व निःशून्य, निराधार, निर्गुण, अपरम्पार ब्रह्म है, जो भक्त पुण्डलीक के लिए इस वालुकामयी धरती पर कमर पर हाथ रखे हुए प्रसन्न दृष्टि से भक्तों की सहायतार्थ सन्नद्ध खड़ा है ।[1] वह निर्गुण ब्रह्म ही भक्ति के लिए विठ्ठल रूप में उपस्थित हुआ है ।[2] यही ज्ञानियों का ज्ञेय, ध्यानियों का ध्येय, तपस्वियों

---

1. निर्विकल्प निराकार । निःशून्य निराधार ।
   निर्गुण अपरम्पार । चिदानन्द सौंवले ।।
   त्या पुंडलिकासाठी । येऊनि उभे वाळवंटी ।
   दोन्ही कर ठेवूनि कटी । प्रसन्न दृष्टि पाहातसे ।।
   नामदेव गाथा - अभंग - 322
2. निर्गुणीचे ऐक्य आले भक्तिमिषे । ते हे विठ्ठलवेषे ठसावले ।।
   नामदेव गाथा - विठ्ठल माहात्म्य - अभंग - 320

का तप, जपकों का जाप्य, योगियों का गुप्त, परमधाम ही पुंडलिक भक्त का प्रिय "विठ्ठल" है ।[1] यही विठ्ठल नामदेव का इष्टदेव है ।

विटेवरी अर्थात् ईंट पर स्थित यह विठ्ठल परमात्मा, परब्रह्म, परमचैतन्य, अनन्त विराट् ब्रह्म ही है ।[2] यही अनन्त गुणों के कारण अनन्त, पतितोद्धारक होने से पतितपावन, पालक होने से विश्वम्भर, जगत् का प्राण होने से जगजीवन, इन्द्रियों का संचालक होने से हृषिकेश, क्लेशनाशक होने से केशव कहलाता है ।[3] इस प्रकार नामदेव के इष्टदेव उस परब्रह्म के प्रतीक मात्र ही हैं ।

नामदेव के हिन्दी पदों में व्यापक ब्रह्म के अर्थों में ही सर्वत्र "विठ्ठल" का प्रयोग हुआ है ।[4] कहीं विठ्ठल के लिए पंढरीनाथ, विठ्ठाई, बीठों शब्द का भी प्रयोग किया है ।[5]

- -

1. ज्ञानियांचे ज्ञेय ध्यानियांचे ध्येय । पुंडलिकाचे प्रिय सुख वस्तु ।
ते हे समचरण उभे विटेवरी । पहा भीमातीरी विठ्ठल रूप
जे तपस्वियांचे तप, जे जपकांचे जाप्य । योगियांचे गौप्य परमधाम ।
वही, अभं - 324 — नामदेव गाथा - महाराष्ट्र शासन प्रकाशन

2. सम्पूर्ण विश्वाचा आत्म्याचा जो आत्मा । तोचि परमात्मा हा विटेवरी ।
द्वादशलिंगाचे जे आत्मलिंग । ते हे पांडुरंग विटेवरी ।।
अनन्त सूर्यांची ज्योतीची निज ज्योती । ती हि उभी मूर्ति विटेवरी ।
अनन्त ब्रह्मांचे जे का निजब्रह्म । ते हे पर ब्रह्म विटेवरी ।
वही, अभंग पद- 383

3. अनन्त म्हणती माझिया स्वामी ते । अनन्तगुण त्यासी म्हणोनियां
पतितपावन म्हणती माझिया स्वामी ते । उद्धरी पतितांसी म्हणोनियां
विश्वम्भर म्हणती माझिया स्वामी ते । पोशितो विश्वाते म्हणोनियां ।
वही, अभंग पद - 382

4. पद- 4, 34, 39, 49, 50, 53, 60, 61, 69, 74, 164, 186, 202 205, 208, 223, 224 आदि
डा॰ मिश्र व मोर्य सम्पादित सं॰ना॰हि॰प॰

5. - वही - 17, 25, 39, 184, 189 आदि

नामदेव के रामजी विठ्ठल हैं । वही माता-पिता, कुल-गोत्र, नाम-स्थान सभी है । वही नामदेव के स्वामी विठ्ठल है ।[1] उसे "बीठो, बीठो" से सम्बोधित करते हुए नामदेव याद दिलाते है कि उसकी सबल माया ने अनेकों व्यक्तियों को भ्रम में डाला है क्योंकि माया के भीतर ब्रह्म और ब्रह्म के भीतर माया नहीं दिखाई देती है ।[2] वही एक मात्र अद्वैत तत्व त्रिकालदर्शी, अकुलपुरुष अन्तिम सत्य है । घट-घट व्यापी सर्वान्तर्यामी विठ्ठलदेव ही इस सृष्टि का कर्ता, विधाता है ।[3] नामदेव उसी पंढरीनाथ से भक्ति की याचना करते है ।[4] अनेक नामों में से नामदेव का प्रिय नाम विठ्ठल ही है ।[5] अन्य एक पद में नामदेव ने जिस विठ्ठल के दर्शन किये हैं वह मन्दिर और मस्जिद की सीमा से परे हैं ।[6] नामदेव का यही उपास्यदेव विठ्ठल है ।

---

1. राम विठ्ठला । हम तुम्हारे सेवक
बालक जैसा माई विठ्ठल बाप विठ्ठल ।
जाती पाती कुलगोत्र विठ्ठल   स.ना.हि.प.=
स्थान विठ्ठल स्थान विठ्ठल । नामा का स्वामी विठ्ठल । वही, पद-186

2. बीठो बीठो तेरी सबल माया ।
आगे हनि अनेक भरमाया
माया अन्तर ब्रह्म न दीसै
ब्रह्म के अन्तर माया नहीं दीसै - वही, पद- 39

3. अकुल पुरख इकु चलितु उपाइआ
घटि घटि अन्तरि ब्रह्मु लुकाइआ
आप ही करता बीठलु देउ
डा. मिश्र व मोर्य सम्पादित - स.ना.हि.प. = पद-223

4. भगति दापि मोरे बाठुला ।
तेरी मुक्ति न मांगु हरि बीठुला । वही, पद- 49

5. सकल भक्त तेरे नामु बालका लिख नामे मनि बीठला ।- वही - पद-202

6. बापु नामे बीठुला देखिआ । मूरख को समझाऊ रे
हिन्दू पूजै देहुरा मुसलमाणु मसीत ।
नामें सोई सेविआ जहा देहुरा न मसीत । वही - पद- 208

इमै वीठलु उमै वीठलु,

वीठल ब्यापक माया ।

कहकर नामदेव के विट्ठल निर्गुण ब्रह्म के ही प्रतीक है उन्हीं से प्रयुक्त विट्ठल का प्रयोग सन्त साहित्य में सभी सन्तों द्वारा किया गया ।

कबीर ने भी विट्ठल या बीठला का प्रयोग नामदेव के समान निर्गुण, निराकार, सर्वव्यापक ब्रह्म के अर्थ में किया है । कबीर का विट्ठल गोकुल नायक[1] व मनमोहन है । उसी विट्ठल को गुरु कृपा से जानकर कबीर उसी में रम रहे है । यही सहजसमाधि है ।[2]

इससे यह तथ्य प्रकट होता है कि उत्तर भारत में विष्णु का विट्ठल नाम व व्यापक ब्रह्म दोनों ही अर्थों में विट्ठल की महिमा सर्वप्रथम सन्त नामदेव द्वारा प्रतिपादित हुई ।[3] जिसके प्रभाव स्वरूप परवर्ती सन्तों द्वारा विट्ठल शब्द निर्गुण ब्रह्म के लिए प्रयुक्त किया गया । और सगुणोपासक भक्तों द्वारा भी गृहीत हुआ । मीरा बाई के काव्य में विट्ठलराय शब्द का प्रयोग हुआ है । गुरु ग्रन्थ साहिब में विट्ठल का प्रयोग सन्त त्रिलोचन व सिख गुरु अर्जुनदास द्वारा भी किया गया है ।[4] अतः हिन्दी पदों के आधार पर उनके "विट्ठल" भी निर्गुण ब्रह्म के प्रतीक मात्र ही हैं ।

- -

1. गोकुल नायक बीठुला, मेरो मन लागो तोहि रे ।कबीर ग्रन्थावली -पद-5.

2. मन के मोहन बीठुला, यहु मन लागौ तोहि रे ।
   चरन कंवल मन मानिया और न भावै मोहि रे ।
   गुरु गमि तै पाइये झखि मरै जिनि कोई रे ।
   तही कबीरा रमि रह्या, सहज समाधी सोइ रे । वही, पद-4

3. डा. विनयमोहन शर्मा - हिन्दी को मराठी सन्तों की देन - पृ. 120

4. सम दिन के समरथ पंथ विठुले हउ बलि बलि जाउ ।
   गुरु अर्जुनदास - गुरु ग्रन्थसाहब

इस प्रकार हम देखते हैं कि रूप, गुण, नाम, लीला स्वरूप – गठन के इन 4 तत्वों के आधार पर विवेचित नामदेव और कबीर की ब्रह्म विषयक धारणा में परम्परागत साम्य ही लक्षित होता है ।

निष्कर्ष

इस विवेचन के आधार पर निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि सन्त नामदेव की और सन्त कबीर की ब्रह्मविषयक एक निश्चित धारणा थी । सभी सन्त सारग्राही महात्मा थे । अतः दर्शन की परम्परागत ज्ञानमार्गीय, भक्तिमार्गीय, योगमार्गीय तीनों धाराओं का प्रभाव उन पर परिलक्षित होता है । उनका ब्रह्म निरूपण परम्परागत होने पर भी विलक्षण और मौलिक है ।

उनका परमतत्त्व अलख, निरंजन, अगम्य, अगोचर, सर्वव्यापक, पूर्ण ब्रह्म ही एक मात्र अन्तिम सत्य है । इसी घट-घट वासी अन्तर्यामी ब्रह्म को दोनों ने ही "राम" से अभिहित किया है । नामदेव उसी परमतत्त्व को "तत कहन तूं राम है"[1] कह रामनाम का जप करने के लिए कहते हैं ।[2] तो सन्त कबीर भी "रामनाम ततसार है"[3] कह उस राम को "निर्गुण" से विभूषित कर "निर्गुण राम" के जपने का उपदेश देते हैं ।[4] यही उन दोनों का निर्गुण ब्रह्म है ।

उनका यह निर्गुण ब्रह्म एक अद्वैत सत्ता है । उनका वर्णन "ब्रह्म सत्यं", "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" वेदान्त की इन उक्तियों के अनुसार हुआ है । वेदान्त की प्रेरणा से ही सन्तों के ब्रह्म निरूपण में निर्गुण रूप को प्रधानता मिली ।

---

1. डा॰ मिश्र व मौर्य सम्पादित – स॰ना॰हि॰प॰ = पद 143
2. रामनाम जपि लोई । परमतत है सोई । – वही – पद 89
3. कबीर ग्रन्थावली – सुमिरण को अंग – साखी – 2
4. निर्गुण राम जपहु रे भाई – – वही – पद 49

निर्गुण ब्रह्म के सभी रूपों के दर्शन उन दोनों को हुये उनकी अनुभूति में साम्य होने से ही वर्णन शैली में किंचित साम्य है । वे उस ब्रह्म को कभी शब्द रूप में, कभी शून्य रूप में, कभी ज्योतिरूप में, कभी आश्चर्यमय रूप में तो कभी सहज रूप में वर्णित करते हुए अन्त में यही बताना चाहते हैं कि परमतत्व ही एकमात्र अन्तिम सत्य है जिसका वास्तविक रूप अगम, अगोचर व अनिर्वचनीय है । दोनों ने ही स्वानुभूति के आधार पर उस परमतत्व को अनिर्वाच्य कह मन, वाणी, बुद्धि से अतर्क्य बताया है और उस अनुभूति को दोनो ने "गूंगे का गुड़" कह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है । उस ब्रह्म के "सर्वविवर्जित रूप" का वर्णन करते हुए नामदेव उसे "व्याप सकल सरीरा" कह सर्वव्यापक और अद्वैत सिद्ध करते हैं,[1] तो कबीर उसी शब्दावली में वर्णन कर उसे "त्रैलोक्यविलक्षण अनुपम" की उपाधि देते है और उस अनुपम तत्व को "पुहुपवास से पातरा" कह उसकी अधिक स्पष्ट व्याख्या करते हैं । और उसे भावाभावविनिर्मुक्त और द्वैताद्वैतविलक्षण, व सगुणनिर्गुणातीत कह उसके निरपेक्ष रूप का प्रतिपादन किया है ।[2]

उस निर्गुण ब्रह्म को गुणरहित कहने पर भी उन्होंने राम में निर्गुण और निर्गुण में गुणों को मान्य किया अतः सगुण ब्रह्म का विवेचन भी किया है । इन सन्तों का सगुण ब्रह्म स्रष्टा, पालक व संहारक होने के साथ दयालु, शरणागत रक्षक व भक्तवत्सल भी है । इस ब्रह्म की भक्तवत्सलता का वर्णन करते हुए उन्होंने कहीं-कहीं अवतार रूप का भी समर्थन किया । अतः इनके द्वारा स्वीकृत अवतार रूप भक्ति परक है ।

ये सन्त अन्तर्यामी निर्गुण राम अर्थात् हृदयस्थ ब्रह्म के उपासक थे । सन्तों ने विश्व की सभी आत्माओं को शालिग्राम के सदृश भगवान के प्रतीक रूप में माना है । कबीर कहते हैं

- -

1. देखिए - इसी अध्याय का पृ॰ 94 - 99
2. द्रष्टव्य - इसी अध्याय का पृ॰ 89 -102

"जैसी देखौं आत्मा, तैसा सालिगराम ।।"[1]

अतः अवतार रूपों तथा बहुदेवोपासना का खंडन किया । उनके खंडन का उद्देश्य ससीम में असीम को, दिखाना था, बहुत्व में एकत्व की अनुभूति कराना था । ज्ञान दृष्टि प्राप्त होने पर द्वैतभाव नष्ट हो जाता है । अतः सन्त उस ज्ञानी भक्त की उच्च कोटि पर पहुंचकर उस एक परमतत्व को ही प्रतिपादित करते हैं ।

यही कारण है कि ब्रह्म के अनन्त नामों में अभेद स्थापित करते हुए दोनों ने "राम" को अपनाया । वह दार्शनिक परम्परा में स्वीकृत निर्गुण राम है, आत्माराम है, वही अन्तर्यामी स्वरूप है ।

यद्यपि नामदेव प्रारम्भ में सगुणोपासक होने से विष्णु के कृष्णावतार "विट्ठल" के अनन्य भक्त थे पर गुरु दीक्षा के पश्चात् वे भी पूर्ण निर्गुणोपासक बन गये और उनके "विट्ठल" व राम दोनों पर ब्रह्म के प्रतीक मात्र है ।

- -

1. कबीर ग्रन्थावली - भ्रम विधौंसण कौ अंग - साखी - 5